कालीतन्त्रम्

रुद्रचण्डीतन्त्रम्

श्री एस. एन. खण्डेलवाल

कालीतन्त्रम्

रुद्रचण्डीतन्त्रम्

श्री एस. एन. खण्डेलवाल

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
528

कालीतन्त्रम्

सटिप्पणभाषाटीकासहितम्

श्रीरुद्रचण्डीतन्त्रम्

भाषाटीकासमन्वितम्

व्याख्याकारः
श्री एस० एन० खण्डेलवाल

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

© सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण या किसी भी विधि (जैसे- इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटो प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे यंत्र में भंडारण, जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो, प्रकाशक की पूर्वलिखित अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता है।

काली तंत्र एवं रूद्र चण्डी तंत्र—एस. एन. खण्डेलवाल

ISBN : 978-93-81484-11-1

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी 221001
दूरभाष : +91 542 2335263, 2335264
e-mail : esp_naveen@yahoo.co.in
website : www.chaukhamba.co.in

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संस्करण : 2020
₹ 250

वितरक :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए
अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली 110002
दूरभाष : +91 11 23286537, (मो.) +91 9811104365
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

4360/4, अंसारी रोड दरियागंज
नई दिल्ली 110002

*

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069
वाराणसी 221001

*

मुद्रक :

ए.के. लिथोग्राफर, दिल्ली,

किञ्चिन्निवेदनम्

कालीतन्त्र की व्याख्या प्रस्तुत करने के पूर्व काली के स्वरूप की गुरुजनों द्वारा कही गई विवेचना को प्रस्तुत करना आवश्यक प्रतीत होता है। देवार्चन के पूर्व अर्चित देवता के स्वरूप-सत्ता की उपलब्धि किये विना अर्चना सम्भव ही नहीं होती। भगवती कालिका का स्वरूप अनन्त रहस्यों से आवृत है। उनकी कृपा से इस सम्बन्ध में जो कुछ अभिज्ञता प्राप्त हो सकी है, उसी के आधार पर यहाँ प्रकाश-प्रक्षेपण किया जा रहा है; साथ ही कौलमार्ग की भी यथासाध्य विवेचना की जा रही है।

महाकालसंहिता के मत से आद्या शक्ति ही दक्षिणा काली हैं। शिवचन्द्र विद्यार्णव कहते हैं कि पुरुष का नाम 'दक्षिण' है एवं शक्ति का नाम है 'वामा'। जब तक यह वाम तथा दक्षिण समान रूप से अवस्थान करते हैं, तब तक संसार बन्धन रहता है। साधना के प्रभाव से यह वामा शक्ति जाग्रत् होकर जब दक्षिण शक्ति पुरुष को विजित कर लेती है और उनके ऊपर आरूढ़ होकर दक्षिणानन्द में निमग्न हो जाती है, तब उनके प्रभाव से दक्षिण तथा वाम—दोनों अंश ही पूर्णत्व की प्राप्ति कर लेते हैं। तभी वे दक्षिणा काली हो जाती हैं। पक्षान्तर से वे दक्षिणामूर्त्ति भैरव से अराधिता होकर दक्षिणा काली हैं।

ये कृष्णवर्णा हैं। कामाख्या तन्त्रानुसार वे सदा कृष्णवर्णा हैं, यह आगम का मत है (कामाख्या तन्त्र, नवम पटल)। महानिर्वाणतन्त्र (१३.५-६) का कथन है कि परा शक्ति अरूपा एवं वर्णहीन हैं। जहाँ कोई वर्ण नहीं है (द्वैत नहीं हैं), वहीं है निबिड़ कृष्णवर्ण (परमाद्वैत)। उनकी ज्योति को हमारे चक्षु धारण कर ही नहीं सकते, तभी तो वे निबिड़ कृष्णवर्णा प्रतीत होती हैं, लेकिन वास्तव में जानने वालों के लिये वे महाज्योति:स्वरूपा हैं।

कर्पूरादि स्तोत्र के प्रथम श्लोक की व्याख्या करते हुये विमलानन्द कहते हैं कि वे शुद्ध सत्त्वगुणात्मक घनीभूत तेजोमयी होने के कारण कृष्णवर्णा (नीलवर्णा) हैं। ऋग्वेद (१०.१२९.३) के अनुसार सृष्टि के पूर्व की अवस्था में एकमात्र तम विद्यमान था। वह आदि तम ही काली है। महानिर्वाणतन्त्र में कहते हैं कि सृष्टि के पूर्व तुम वाक्य एवं मन से अतीत तमोरूपा अकेली विद्यमान थी (४.२५.३३); यही स्थिति है काली।

काली दिगम्बरा हैं। वस्त्र है आवरण। सबसे सूक्ष्मावरण है माया। काली इस

मायारूपी वस्त्र से अतीत होने के कारण आवरणरहित दिगम्बरा हैं। ये मायातीता होकर भी अनन्त जीवों को मायापाश में बद्ध किये रहती हैं। ये मुक्तकेशी हैं। जो मायापाशरूप है। जो मायाकेश से आबद्ध नहीं है, वे मुक्तकेशी काली हैं। इनके ललाट पर अर्द्धचन्द्र स्थित है। यही है अमृततत्त्वरूप चन्द्रकला (महानिर्वाणतन्त्र-१३.७.१)। इनके ललाट में चन्द्रमा की सप्तदशी कला है, अमाकला है। (अमाकला का वर्णन महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराजकृत 'तत्त्वानुभूति' में देखना चाहिये)।

काली त्रिनयना हैं, अतीत-अनागत-वर्त्तमानरूपी त्रिनेत्रयुता। अथवा नयनत्रितयरूपेण वह्नि, सूर्य एवं चन्द्र, जो सदैव उद्भासित रहते हैं। द्विदलयुक्त आज्ञाचक्र के वाम दिक् में चन्द्रात्मक 'हं' बीज ही देवी का वाम नयन है एवं दक्षिण की ओर सूर्यात्मक 'क्षं' बीज देवी का दक्षिण नयन है; साथ ही आज्ञाचक्र की कर्णिकारूप में स्थित 'लं' बीज देवी का तृतीय नयन है।

देवी के करालमुखस्थ घोर दन्तसमूह उनकी अविश्रान्त लयक्रिया का निदर्शन करते हैं। उनके गण्डस्थल से रुधिर विगलित होता रहता है। वह रक्त है रजोगुण। वे रजोगुणरहिता हैं। तभी तो रक्त बराबर बहकर यह भाव व्यक्त करता रहता है कि वे रजोगुण से रहित हैं। रक्तरूप रजोगुण का उनकी मूर्त्ति में स्थान नहीं है। वे शुद्ध सत्त्व गुणात्मिका हैं। देवी के कानों में दो बालकों के शव कर्णाभूषणरूप में लटकते रहते हैं। निष्काम निर्विकार स्थिति ही बालक का स्वरूप है। इसी स्थिति का प्रतीक है—बालकों का शव। उनके गले में लटक रही मुण्डमाला ही वर्णमाला है। कर्पूरादि स्तव के टीकाकार कहते हैं कि पूर्व सृष्टि का संस्कारसमूह है मुण्डमाला। इन्हीं संस्कारों से नवीन सृष्टि होगी, यही मुण्डमाला का रहस्य है।

देवी के पीन उन्नत स्तन उनकी पालन शक्ति के परिचायक हैं। वे जगत् का पालन करने वाली हैं। देवी के एक हाथ में सद्यः-च्छिन्न मुण्ड है एवं दूसरे में है उद्यत खड्ग। देवी ज्ञानखड्ग से साधक के देहबोधरूप मुण्ड को च्छिन्न करती हैं। देवी के अन्य दो हाथों में क्रमशः अभय एवं वरमुद्रा है। जीव की विपत्ति से रक्षा करना ही अभय है एवं उसे स्व-स्व कर्म में प्रेरित करना ही वरमुद्रा है (महानिर्वाण तन्त्र १३.१०)। देवी का एक पैर आगे है एवं एक पैर पीछे है; अतः वे आलीढ़पादा हैं (योगिनीतन्त्र)। इसका तात्पर्य यह है कि उनका एक चरण अतीत में है, जबकि दूसरा चरण भविष्यत् में हैं। देवी की कमर में शवों के हाथ करधनी के समान लटक रहे हैं। यह कर्मसंस्कार का प्रतीक है, क्योंकि हाथों से ही कर्म होता है। स्थूल देह नष्ट हो जाने पर भी कर्म-संस्कार नहीं जाता; अतः देवी उसे काट देती हैं। यही है शवों के हाथों का रहस्य।

देवी श्मशान में महाकाल के साथ सुरत में रत हैं। कल्पान्त में जब सब कुछ नष्ट हो जाता है, तब वह सब श्मशानस्वरूप हो जाता है। ऐसी स्थिति में महाकाल तथा देवी एक हो जाते हैं। यह अखण्डानन्दरूपी सुरत ही परमशिवरूप शिव-शक्ति की सामरस्य भूमि है। काली श्मशानवासिनी हैं। श्मशान में चिताग्नि मृत स्थूल देह को आत्मसात् करती है। वह आत्मसात् करने वाली काली ही हैं (गुप्तसाधनतन्त्र, षष्ठ पटल)। यह चिताग्नि ही सूक्ष्म ज्ञानाग्नि है। निरुत्तरतन्त्र (प्रथम पटल) में कहते हैं कि श्मशान ही चिता एवं योनि है। योनि अर्थात् विश्व का कारण, कारणब्रह्म। यह काली ही हैं कारणब्रह्म। चिता का अर्थ है—चित् शक्ति। अन्य दृष्टि से महाप्रलय में सभी प्राणी जहाँ लीन होते हैं, वह परब्रह्म ही यथार्थ श्मशान है; इसीलिये काली श्मशानवासिनी हैं अर्थात् परब्रह्म में अधिष्ठिता हैं।

देवी शिवा (शृगालिनी) से परिवृत्ता, घिरी रहती हैं। शिवा का अर्थ है शिवप्रकृति। दक्षिणा काली श्मशानवासिनी होने पर भी श्मशानकाली नहीं हैं, यह स्मरण रखना चाहिये। देवी काली सर्वदा मद्यपान से प्रमत्त रहती हैं। साधक में तमोगुण का उद्भव होना ही मद्य है। कृपामूर्त्ति काली साधक के इस तमोगुणरूपी मद्य का पान करके उसे स्वच्छ बना देती हैं। यही है—देवी का मद्यपान से प्रमत्त हो जाना। भगवती भयंकरी हैं, सृष्टि में सर्वत्र प्रतिक्षण संहारकार्य का चलना ही उनकी भयंकरता है। यह भयंकरी हैं पाशबद्ध जीव के लिये। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि यह सब काली के स्थूल रूप का वर्णन है। उनका सूक्ष्म रूप तो मन-वाणी से परे है। शारदातिलक में कहा गया है कि महाशक्ति के सूक्ष्म रूप का ध्यान कर सकना सम्भव ही नहीं है। भगवती विपरीतरतातुरा हैं। रति का तात्पर्य है—आसक्ति और वे इससे विपरीत हैं। अर्थात् आसक्ति न होकर वे निवृत्तिरूप हैं। जीव की गति प्रवृत्तिपथ पर होती है एवं भगवती उसे विपरीत पथ पर, निवृत्ति पथ पर ले जाने के कारण ही विपरीतरतातुरा हैं।

कालीतन्त्र का जो स्वरूप प्राप्त होता है, वह अपने-आपमें पूर्ण नहीं है। काल-प्रभाव से इसका महत्त्वपूर्ण अंश लुप्त हो चुका है। इसी कारण इसमें जो भी प्रयोग-विधियाँ वर्णित हैं, वे प्रायः अपूर्ण हैं। उनमें विधान का सर्वथा अभाव है। साधक को इसके लिये अन्य तन्त्रग्रन्थों की सहायता लेकर इच्छित साधना के विधान का पुनरुद्धार करना ही होगा। इस सम्बन्ध में जिज्ञासुवर्ग के लिये आगमतत्त्वविलास, सर्वोल्लासतन्त्र तथा महाचीनाचारसारतन्त्र उपादेय प्रतीत होता है।

कालीतन्त्र मुख्यतः कौलमार्गीय तन्त्र है। इस सम्प्रदाय के अनुसार सप्त आचार में कौलाचार अन्यतम मार्ग है। 'कुल' तथा 'कौल' शब्द एकार्थवाची है। कौलाचार

ही कुलाचार है। विभिन्न दृष्टिकोण से अथवा सम्प्रदायों की भिन्न-भिन्न मान्यतानुसार इसके अर्थ में भी भिन्नता परिलक्षित होती है। भास्काराचार्य अपने सौभाग्यभास्कर में 'कुल' शब्द का तात्पर्य 'वंश' बतलाते हैं। इनके मत में परमशिव से लेकर अपने गुरु की परम्परा-पर्यन्त का वंश 'कुल' है। 'संख्या वंश्येन' इस पाणिनिसूत्र का भाष्य करते समय भाष्यकार का कथन है कि कुल दो प्रकार का है, प्रथम है—विद्यागत एवं दूसरा है—जन्मगत। कुलगत आचार ही कौलाचार है। यह है—विद्यागत कुल। कुलज्ञान ही मोक्षदायक है। जिसे यह ज्ञान प्राप्त है, वही है कौल (कुलार्णवतन्त्र-१७.२६)। वे आगे यह भी कहते हैं कि अपने-अपने वंशपरम्परा से प्राप्त मार्ग ही वंशसम्बन्ध-हेतु होने के कारण कौलमार्ग है—स्वस्ववंशपरम्पराप्राप्तो मार्गः कुलसम्बन्धित्वात् कौलः; लेकिन तन्त्रशास्त्रोक्त कौलाचार में ऐसा तात्पर्य भासित नहीं होता। भास्करराय पुनः लिखते हैं कि सजातीय मातृ-मान-भेद पदार्थ का समूह है कुल—सजातीयानां मातृमानमेयानां समूहः कुलम्। प्रकारान्तरेण मातृ-मान-मेय ही है—ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेय। मातृ (ज्ञातृ) अर्थात् माता किंवा ज्ञाता = जीव, मान किंवा ज्ञान = ज्ञानक्रिया, मेय किंवा ज्ञेय = ज्ञान का विषय। ज्ञातृ-ज्ञान तथा ज्ञेय से जिस ज्ञान का साजात्य है, उसकी व्याख्या करते हुये 'कौलमार्गरहस्य' में कहा गया है कि जगत् के समस्त पदार्थ हमारे ज्ञान के विषय हैं। 'मैं' है ज्ञान का कर्त्ता, 'जानता हूँ' यह है ज्ञानक्रिया। इस प्रकार एक ही ज्ञान समवायसम्बन्ध से ज्ञाता में, विषयतासम्बन्ध से ज्ञेय में तथा तादात्म्यसम्बन्ध से ज्ञानक्रिया में अवस्थान करता है। इस प्रकार से ज्ञातृ-ज्ञेय-ज्ञानरूपेण त्रिपुटीकृत जगत् के सभी पदार्थ एक ज्ञानरूप धर्म द्वारा सजातीय हैं। कुलसम्बन्ध में जिसका ज्ञान ऐसा है, वह कौल है। तब भी पृथक्-पृथक् दृष्टिकोण के कारण इसकी व्याख्या भी भिन्न-भिन्न है। निर्वाणतन्त्र-मतानुसार जिस देश में मन्त्रसाधना का जो द्वार निर्दिष्ट है, जो उस द्वारविशिष्ट हैं, वह कौलिक है—

यस्मिन् देशे तु यद्द्वारो निर्दिष्टे मन्त्रसाधने।
तद्द्वारेण विशिष्टो यः कौलिकः स च कीर्त्तितः।।

(निर्वाणतन्त्र, एकादश पटल)

लेकिन कुलार्णवतन्त्र की परिभाषा इससे भिन्न है। तदनुसार जिनको गुरु की करुणा प्राप्त हो गयी है, जिनका पाप दीक्षा मिल जाने के कारण धुल गया है, ऐसे कुलपूजारत साधक ही कौल हैं; अन्य कौल नहीं है (कुलार्णव, एकादश पटल)।

जगत् के समस्त पदार्थ शक्त्यात्मक हैं। अतः कुल ही शक्ति है। तन्त्र में शक्ति ही कुल है। शिव हैं—अकुल। कुल-अकुल का सम्बन्ध ही कौल है। यह शिव-शक्ति

की सामरस्य स्थिति है। देवी कुलवती होने के कारण कौलिनी कही गयी हैं। ऐसा ज्ञान जिसे है, वह है कौल—

अकुलं शिवतामुक्तं कुलं शक्तिः प्रकीर्त्तितः।
कुलाकुलानुसन्धानान्निपुणाः कौलिकाः प्रिये।।

(कुलार्णवतन्त्र १७.२७)

तन्त्रालोक का कथन है—

अकुलस्यास्य देवस्य कुलप्रथनशालिनी।

(तन्त्रालोक ३.६७)

इसकी व्याख्या करते हुये टीकाकार कहते हैं कि कुल तो पूर्ण संविल्लक्षण है। जिससे यह विचित्र विश्व उदित तथा अस्तमित होता है, उसे शिव-शक्तिविवर्जित कुल जानना चाहिये। अभिनवगुप्त कहते हैं कि कुल है—पूर्ण संविल्लक्षण ब्रह्म। यहीं पर टीकाकार 'कुलप्रथनशालिनी' की व्याख्या के प्रसंग में कहते हैं कि शक्तिप्रसरात्मक जगत् ही कुल है—

'कुलस्य शाक्तप्रसरात्मनो जगतः यत् प्रथनं.......' (तन्त्रालोक ३.६७ की टीका)

सौन्दर्यलहरी के श्लोक १० की टीका करते हुये आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि 'कु' अर्थात् पृथ्वीतत्त्व जहाँ लीन हो जाता है, वही कुल है अर्थात् आधारचक्र। लक्षणा द्वारा सुषुम्ना मार्ग ही कुल है। जो इसके पूजक हैं, वे हैं कौल। आचार्य लक्ष्मीधर कहते हैं कि मूलाधारस्थ कुण्डलिनी शक्ति को ही कौलिनी कहा जाता है। वे ही त्रिकोणपूजक कौलगण की उपास्या हैं (द्रष्टव्य—सौन्दर्यलहरी, श्लोक ४२ की टीका)। यही कुलयोषित् भी है (द्रष्टव्य—सौन्दर्यलहरी, श्लोक ८ की टीका)।

कुलाचार की व्याख्या महानिर्वाणतन्त्र में सम्यक् रूप से अंकित है। तदनुसार जीव, प्रकृतितत्त्व, दिक्, काल, आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी ही कुल है। इन सबमें ब्रह्मबुद्धिपूर्वक जो निर्विकल्प आचरण है, वही है—कुलाचार। यह आचार धर्मार्थकाममोक्ष-प्रदाता भी है (महानिर्वाणतन्त्र-७.९७-९८)। रुद्रयामल के अनुसार जिस आचार में कुलस्त्री, कुलगुरु तथा कुलदेवी की नित्य पूजा होती है, वही कुलाचार है।

वेदपन्थी समयाचारी सम्प्रदाय वाले कौलाचार को वेदबाह्य, वेदबहिष्कृत पथ मानते हैं। देवीभागवत में भी कौलाचार को दुराचार कहा गया है। वहाँ कापालिक, कौलिक, बौद्ध, जैन आदि को पण्डित—विद्वान् होने पर भी दुराचार-प्रवर्त्तक माना गया है (देवीभागवत-१२.९.९६); तथापि कुलार्णवतन्त्र के अनुसार यह वेदबाह्य नहीं है (कुलार्णव-१०.११७)। सिद्धान्तसार में ब्राह्मण को कौलाचार न करने का आदेश

है। उक्त मतानुसार यह वेदबाह्य है। कौलाचार वेदबाह्य है अथवा नहीं है, भले ही इस सम्बन्ध में मतभेद हो; लेकिन जहाँ तक वामाचार का प्रश्न है, उसे सभी वेदबाह्य मानते हैं। 'कौलमार्गरहस्य' के अनुसार कौलाचार तथा वामाचार भिन्न है। यद्यपि दोनों में ही पञ्चमकार विहित है। वामाचार का पालन ब्राह्मण नहीं कर सकते, लेकिन कौलाचार तो वेदाचारी ब्राह्मण के लिये भी विहित है। इस ग्रन्थ में वामाचार को शूद्रादि के लिये विहित माना गया है। वेदाचार से भ्रष्ट ब्राह्मण वामाचार पथ से चलकर कौलाचार की शरण ले सकते हैं।

परशुरामकल्पसूत्र ३.३१ पर रामेश्वर अपनी वृत्ति में लिखते हैं कि तन्त्रशास्त्र अतिगूढ़ है। उसका भाव भी अत्यन्त निगूढ़ है, तथापि वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ बुद्धिमान् जितेन्द्रिय ब्राह्मण जो तन्त्रार्थ के गूढ़ भावों का मन्थन करके उसका सार ग्रहण करने में सक्षम हैं, वे ही कौल मार्ग के अधिकारी हैं; अन्य इसका आश्रय लेकर दु:ख ही पायेंगे। इस मतानुसार कुलमार्ग वेदबाह्य नहीं है। 'कौलमार्गरहस्य' में कहते हैं कि वाममार्गी साधना तामसिक है, जबकि कौल साधना सात्त्विक है। वेदाचारी साधकगण सत्त्वप्रधान होते हैं। उनके लिये तामसिक साधना प्रयोज्य नहीं है। जिनकी ऐहिक कामना है, उनके लिये तामसिक वाममार्ग प्रशस्त है।

तन्त्र में कौलाचार प्रधानत: श्रीविद्या विषय को लेकर चर्चित है। मुख्य कौलाचार में एकमात्र श्रीविद्या ही विहित है। इसकी आराध्या है—श्रीविद्या, षोडशी। देवी के अन्य नाम हैं—त्रिपुरसुन्दरी, ललिता, कामेश्वरी आदि। तब भी काली, तारा, भुवनेश्वरी आदि भी कौलाचार में अराध्या हैं। समयाचारतन्त्र-मतानुसार कौलाचार द्विविध है। जो पञ्चमकार से युक्त है, वह है आर्द्र एवं जो पञ्चमकार से रहित है, वह है शुष्क (द्रष्टव्य—प्राणतोषणी तन्त्र, काण्ड-७)। लक्ष्मीधर के मतानुसार कौलाचार द्विविध है—पूर्वकौल तथा उत्तरकौल (द्रष्टव्य—सौन्दर्यलहरी, श्लोक ३३ की टीका)।

लक्ष्मीधर के मत से कौलगण आधारचक्रस्थ त्रिकोण को बिन्दुस्थान मानकर वहाँ बिन्दु की अर्चना करते हैं। त्रिकोण (योनि) द्विविध है। श्रीचक्र के अन्तर्गत प्रथम है नवयोनि-मध्यवर्त्ती योनि एवं द्वितीय है—सुन्दरी तरुणी की प्रत्यक्ष योनि। पूर्वकौलगण भोजपत्र, सुवर्णपत्र, पट्टवस्त्र की पीठ पर श्रीचक्रान्तर्गत नवयोनि-मध्यवर्त्ती योनि को अंकित करके पूजा करते हैं, जबकि उत्तरकौलगण सुन्दरी तरुणी की प्रत्यक्ष योनि की भावनादि से पूजा करते हैं। इस कालीतन्त्र में भी प्रत्यक्ष योनि पर दृष्टि को निबद्ध करके जप का निर्देश दिया गया है।

पूर्वकौलों के मतानुसार शक्ति तथा शिव के बीच शेष-शेषी भाव है। लक्ष्मीधर कहते हैं कि आनन्दभैरवीरूपा महाशक्ति आनन्दभैरवरूप शिव का शरीर है। उधर

नवव्यूहात्मक आनन्दभैरव भी देवी के शरीर हैं। सामरस्ययुक्त दोनों का परानन्द परस्परत: सापेक्ष एवं साधारण है। दोनों का शेष-शेषी भाव भी आपेक्षिक है। शेष अर्थात् अङ्ग अथवा प्रधान, शेषी अर्थात् अङ्गी अथवा अप्रधान। जगत् की व्यक्तावस्था (सृष्टिस्थिति) में आनन्दभैरवी की प्रधानता होने के कारण वे शेषी हैं और आनन्दभैरव शेष हैं; लेकिन लयकाल में आनन्दभैरवी की प्रधानता नहीं रहती। तब आनन्दभैरव प्रधान रहने के कारण शेष हो जाते हैं एवं आनन्दभैरवी शेषी हो जाती हैं। उत्तरकौलगण का मत भिन्न है। वे शिवतत्त्व को शक्ति में अन्तर्भुक्त मानते हैं, दोनों अभिन्न हैं (द्रष्टव्य—सौन्दर्यलहरी, श्लोक २३ की टीका)। ये शेष-शेषी भाव वाला सिद्धान्त भी नहीं मानते।

इन दो विभागों (उत्तरकौल-पूर्वकौल) के अतिरिक्त भी कौलसम्प्रदाय के अनेक विभाग का पता चलता है। पूर्वकौलगण के तीन सम्प्रदाय थे—मूलाधारनिष्ठ, स्वाधिष्ठाननिष्ठ, तथा उभयनिष्ठ। इसी प्रकार उत्तरकौलगण के चार सप्रदायों का भी सन्धान प्राप्त होता है—मातङ्गीनिष्ठ, वाराहीनिष्ठ, कौलामुखीनिष्ठ, तन्त्रनिष्ठ। कौलज्ञाननिर्णय तन्त्र में रोमकूपादिकौल, वृषणोत्थाकौल, वह्निकौल, पदोत्तिष्ठकौल, महाकौल, सिद्धकौल, सिद्धामृतकौल, योगिनीकौल, चन्द्रकौल, शक्तिभेदकौल, ऊर्मिकौल, ज्ञानकौल, सिद्धेश्वरकौल आदि विभिन्न कौलसम्प्रदाय का नामोल्लेख मिलता है। लेकिन नाम के अतिरिक्त इनके सम्बन्ध में अन्य कोई तथ्य हमें प्राप्त नहीं होता। अकुलवीरतन्त्र में वामकौल तथा दक्षिणकौल सम्प्रदाय का नामोल्लेख मिलता है—

मीमांसा पञ्चरात्रञ्च वामदक्षिणकौलिका:।

(अकुलवीरतन्त्र-१३०)

लेकिन इन दोनों के मध्य क्या भेद है, इसका विवरण यहाँ नहीं मिलता। नामतालिका से यह द्योतित होता है कि कभी कौलसाधना का क्षेत्र तथा प्रभाव अत्यन्त व्यापक था। इसका क्षेत्र इतना व्यापक था कि ब्राह्मण से लेकर अन्त्यज तक कुलाचार के अधिकारी मान लिये गये थे—

विप्राद्यन्त्यजपर्यन्ता द्विपदा येऽत्र भूतले।
ते सर्वेऽस्मिन् कुलाचारे भवेयुरधिकारिण:।।

(महानिर्वाणतन्त्र-१४.१८४)

यदि कोई कौलाचार्य चाण्डाल, यवन आदि को नीचा मानता है, स्त्रीसमूह की निन्दा करता है, उन्हें कौलधर्म की दीक्षा देने से मना कर देता है, तब उसे अधोगति मिलती है। महानिर्वाणतन्त्र (१४.१८७) में कहते हैं—

चाण्डालं यवनं नीचं मत्वा स्त्रियमवज्ञया।
कौलं न कुर्याद्यः कौलः सोऽधमो यात्यधोगतिम्।।

सार्वजनीन होने पर भी यह अति दुर्गम पथ है। तलवार की धार पर चलना, व्याघ्र के गले में गलबाही डाल कर चलना जितना कठिन है, कौलमार्गानुसरण भी उतना ही कठिन है—

कृपाणधारगमनात् व्याघ्रकण्ठावलम्बनात्।
भुजङ्गधारणान्नूनमशक्यं कुलसेवनम्।।

(कुलार्णव-२.१२३)

गन्धर्वतन्त्र में कौलाचार को निसर्गदुर्गम अर्थात् स्वभावदुर्गम कहा गया है (द्रष्टव्य—गन्धर्वतन्त्र-४०.३०)।

यह तन्त्र एक प्रकार से कौलाचार पर आधारित है। इसमें पञ्चमकार से सम्बन्धित साधना का भी स्थान-स्थान पर संकेत प्राप्त होता है। कालीतन्त्र का जो यह स्वरूप प्राप्त हो सका है, इसमें प्रक्रिया सम्बन्धित-निर्देश अत्यल्प है। इसमें उसके लिये इंगित-मात्र किया गया है। प्रतीत होता है कि कालीतन्त्र का अधिकांश भाग काल के गह्वर में अन्तर्हित हो चुका है। अतएव जो उपलब्ध है, मात्र उसका ही प्रकाशन किया जा रहा है। इसमें प्रक्रिया से सम्बन्धित जो संकेत हैं, उनका स्वरूप स्पष्ट करने के लिये पाठकगण 'सर्वोल्लासतन्त्र' तथा 'आगमतत्त्वविलास' जैसे ग्रन्थों से सहायता ले सकते हैं।

एस. एन. खण्डेलवाल

विषयानुक्रमः

पटलः	विषयः	पृष्ठाङ्कः
प्रथमः पटलः	सपर्याविधिः	१
द्वितीयः पटलः	पुरश्चरणविधिः	२८
चतुर्थः पटलः	कामनाविधिः	३३
पञ्चमः पटलः	सिद्धविद्याविधिः	३७
षष्ठः पटलः	वीरसाधना	४०
सप्तमः पटलः	रहस्यपुरश्चरणविधिः	४६
अष्टमः पटलः	आचारविधिः	५१
नवमः पटलः	विद्याफलविधिः	५५
दशमः पटलः	सिद्धविद्याविधिः	५९
एकादशः पटलः	सामान्यसाधनम्	६६
द्वादशः पटलः	परमगुह्याचारः	७०

।।श्रीः।।

कालीतन्त्रम्

सटिप्पणभाषाटीकासहितम्

प्रथमः पटलः

(सपर्याविधिः)

कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुम्।
उवाच पार्वती देवी भैरवं परमेश्वरम्।।१।।

कैलास के शिखर पर उपविष्ट देवदेव, जगद्गुरु, परमेश्वर भैरव से पार्वती देवी ने इस प्रकार कहा।।१।।

*** टिप्पणी ***

कालिकायाः पदाम्भोजं संस्मृत्य भवतापहम्।
तत्प्रीत्यै कालिकातन्त्रटिप्पणी क्रियते मया।।
पूर्णानन्दगिरेर्वंशकरीरेण द्विजन्मना।
श्रिया सतीशचन्द्रेण विविच्य बहुयत्नतः।।
भ्रमात्प्रमादादथवा ज्ञानदौर्बल्यहेतुना।
तन्त्रार्थतत्त्वं यद्यस्यामन्यथा प्रतिपाद्यते।।
तदा तद्दोषभीतेन प्रार्थ्यते सुतवत्सले।
मत्वा तं पुत्रजं दोषं मातस्तं क्षन्तुमर्हसि।।

कैलासशृङ्गमेव महादेवस्य नित्यनिवासस्थानम्। तत्रस्थ एव भगवान् सर्वाणि तन्त्राणि समावतारयत्। अत आह—कैलासशिखरासीनमित्यादि। वामकेश्वरतन्त्रस्य सेतुबन्धाख्यटीकायां (१.१३) श्रीमद्भास्कररायेणोक्तं—'स्वयमद्वितीयोऽपि परमशिवो द्विविधं विग्रहं प्रकाशविमर्शभेदेन विरच्य विमर्शांशेन प्रष्टृत्वं प्रकाशांशेन वक्तृत्वञ्च स्वीकृत्य तन्त्रमवतारयितुमारभते—श्रीदेव्युवाच' इति। तदुक्तं स्वच्छन्दतन्त्रे—

गुरुशिष्यपदे स्थित्वा स्वयमेव सदाशिवः।
प्रश्नोत्तरपरैर्वाक्यैस्तन्त्रं समवतारयत्।। इति।

अत्राडागमस्त्वागमशास्त्रस्यानित्यत्वान्न कृतः। कल्पसूत्रेऽपि—'भगवान् परमशिवभट्टारकः श्रुत्याद्यष्टादशविद्याः सर्वाणि दर्शनानि लीलया तत्तदवस्थापन्नः प्रणीय संविन्मय्या भगवत्या भैरव्या स्वात्माभिन्नया पृष्टः पञ्चभिर्मुखैः पञ्चाम्नायान् प्रणिनाय' इति। तेन परमशिवः स्वयमेव विमर्शांशेन स्वात्मानं पृच्छतीत्यर्थः। 'श्रीभैरव उवाच' इत्यस्यापि स्वयमेव प्रकाशांशेन स्वात्मानमुत्तरयतीत्यर्थः। प्रकृते लिटा कथितं भूतत्वन्तु वक्तव्यस्य सदाननत्वात्। अत एव तन्त्रराज उत्तरपटलेषु वक्ष्यमाणोऽप्यर्थः पूर्वपटलेषु 'प्रोक्त' इतिभूतार्थकपदेनैव तत्र तत्र निर्दिश्यते। अनद्यतनत्वन्त्वकालकलितत्वात्। परोक्षत्वं त्वगिन्द्रियगोचरत्वादुपद्यत इति साम्प्रदायिकाः। एवं सर्वत्रापि योज्यम्।।१।।

श्रीपार्वत्युवाच

देवदेव महादेव सृष्टिस्थित्यन्तकारक।
किं तद् ब्रह्ममयं धाम श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।।२।।
कालिकाया महाविद्यां समस्तभेदसंयुताम्।
सपर्याभेदसहितां चतुर्वर्गफलप्रदाम्।।३।।

श्री पार्वती देवी कहती हैं—हे सृष्टि-स्थिति-संहारकारी देवदेव महादेव! मैं यह सुनना चाहती हूँ कि वह ब्रह्ममय तेज कैसा है? तथा काली देवी के चतुर्वर्ग-प्रदायक महामन्त्र को भी उसके समस्त भेदों के साथ-साथ पूजनभेद के साथ भी सुनने की मेरी इच्छा है।।२-३।।

टिप्पणी—ब्रह्ममयं ब्रह्मस्वरूपं धाम तेज इत्यर्थः। कालिकाया महतीं विद्यां विद्याशब्देन परिभाषित्। मन्त्रम्, ताञ्च समस्तभेदसंयुताम् एकाक्षरत्र्यक्षरादिभेदसहितां, सपर्याभेदसहितां पूजायाः प्रकारभेदेन सहिताञ्च, श्रोतुमिच्छामीत्यन्वयः। अत्र देवीप्रश्नस्य द्विविधत्वे प्रतिभातेऽपि वस्तुत एक एव प्रश्नः। शक्तिशक्तिमतोरभेदात् कालिकाया एव ब्रह्मकोटाववस्थानमिति शाक्तसिद्धान्तात्। अत एव भैरवेणापि देवीप्रश्नानन्तरं कालिकाया मन्त्रपूजादिकमेवोक्तं, न तु पृथग् ब्रह्मस्वरूपम्। देव्याः प्रश्नेऽपि 'चतुर्वर्गफलप्रदाम्' इत्यनेन कालिकाया एव ब्रह्मस्वरूपत्वं सूचितम्। चतुर्वर्गान्तर्गतमोक्षफलप्रदाने ब्रह्मेतरस्याक्षमत्वात्। 'चतुर्वर्गफलप्रदाम्' इत्यस्य महाविद्याया विशेषणत्वेऽपि मन्त्रदेवतयोरैक्यात् कालिकैव चतुर्वर्गफलप्रदा। महाविद्यापदेन द्वाविंशत्यक्षरमन्त्र एव सूचितः, तस्य मुख्यत्वात्। अत एव भैरवेणापि प्रथमं द्वाविंशत्यक्षरमन्त्रं पूजादिकञ्चोक्त्वा पश्चादन्ये मन्त्रभेदाः कथिताः।।२-३।।

श्रीभैरव उवाच

महाविद्यां महामायां महायोगीश्वरीं पराम्।
सर्वविद्यामहाराज्ञीं सर्वसारस्वतप्रदाम्।।४।।
कामत्रयं वह्निसंस्थं रतिबिन्दुविभूषितम्।
कूर्चयुग्मं तथा लज्जायुगलं तदनन्तरम्।।५।।

दक्षिणे कालिके चेति पूर्वबीजानि चोद्धरेत्।
अन्ते वह्निवधूं दद्याद् विद्याराज्ञी प्रकीर्त्तिता ।।६।।

श्रीभैरवदेव कहते हैं—तुम्हारी इच्छा के अनुसार जिस मन्त्र का निरूपण करूँगा, वे मन्त्रमयी कालिकादेवी महाविद्या, महामाया, महायोगेश्वरी, सर्वविद्याधीश्वरी, सर्वविद्यादायिनी हैं। अव देवी के बत्तीस अक्षर के महामन्त्र का निरूपण करता हूँ। तीन काम अर्थात् ककार, उसके साथ युक्त वह्नि अर्थात् 'र'कार, तदनन्तर रति अर्थात् ईकार एवं बिन्दु अर्थात् अनुस्वार। इससे मन्त्रोद्धार होता है—क्रीं क्रीं क्रीं। तत्पश्चात् दो कूर्चबीज अर्थात् 'हुं हुं', तदनन्तर दो लज्जाबीज अर्थात् 'ह्रीं ह्रीं', तदनन्तर 'दक्षिणे कालिके', तदनन्तर पूर्वोक्त सात मन्त्र लगाकर अन्त में 'स्वाहा' लगाना चाहिये। अव मन्त्र होता है—क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। इस वत्तीस अक्षरों वाली महाविद्या को मन्त्रमयी सर्वविद्याश्रेष्ठा कहते हैं।।४-६।।

टिप्पणी—कामः ककारः। 'कः क्रोधीशो महाकाली करमदेवः प्रकाशकः' इति (सेतुवन्धे सप्तमविश्रामे त्रयश्चत्वारिंशत् श्लोकव्याख्यायां भास्कररायधृत-)कोषात्। तस्य त्रयं ककारत्रयमित्यर्थः। वह्नी रेफः। रेफस्य वह्निवीजत्वात्, 'रः स्यात्कामेऽनिले वह्नौ' इत्येकाक्षरकोषाच्च। तत्संस्थं रेफारूढं ककारत्रयमित्यर्थः। रतिः ईकारः। 'ईर्गोविन्दस्त्रिमूर्त्तिः स्याद्वामाक्षी कमला कला। माया लक्ष्मी रतिः शान्तिर्वैष्णवी बिन्दुमालिनी' इति मन्त्राभिधानात्। बिन्दुरनुस्वारः। 'अक्रूरो व्योमरूपश्च प्रद्युम्नश्चन्द्रसंज्ञकः। अनुस्वारस्तथा विन्दुरङ्कारश्च शिरोगतः' इति मातृकानिघण्टुवचनात्। रतिबिन्दुभ्यामींकारानुस्वाराभ्यां विभूषितं रेफारूढं ककारत्रयं, तेन क्रीं क्रीं क्रीं इत्यायाति। तदनन्तरं कूर्चयुग्मं, कूर्चं हूं बीजम्। 'हूं कूर्चं परमेशि दीर्घकवचम्' इति मन्त्राभिधानात्। तस्य युग्मम्। तेन हूं हूं इत्येवं भवति। तदनन्तरं लज्जायुगलम्। 'ह्रीं लज्जा गिरिजा च शक्तिरपि हृल्लेखा च माया परा' इति मन्त्राभिधानात् लज्जापदेन ह्रीं बीजमुच्यते, तस्य युगलं, तेन ह्रीं ह्रीं इति भवति। एवंक्रमेण क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं इति बीजसप्तकमुद्धृतम्। तदनन्तरं 'दक्षिणे कालिके' इति स्वरूपम्। ततः परं पूर्ववीजानि पूर्वोक्तसप्तवीजानि उद्धरेत्। अन्ते सर्वशेषे वह्निवधूं स्वाहां दद्यात्। 'स्वाहा वह्निवधूः शिरोऽपि ठयुगम्' इति मन्त्राभिधानवचनाद्वह्निवधूशव्देन स्वाहोच्यते। एतेन 'क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा' इति द्वाविंशत्यक्षरो दक्षिणकालिकामन्त्र उद्धृतः।

स्वाहान्ताः स्त्रीदेवतामन्त्रा 'विद्या'शव्देन परिभाष्यन्ते। तथा च शारदातिलके द्वितीयपटले—

मन्त्राः पुंदेवता ज्ञेया विद्याः स्त्रीदेवताः स्मृताः।
पुं-स्त्री-नपुंसकात्मानो मन्त्राः सर्वे समीरिताः।।
पुंमन्त्रा हुंफडन्ताः स्युर्द्विठान्ताश्च स्त्रियो मताः।
नपुंसका नमोऽन्ताः स्युरित्युक्ता मनवस्त्रिधा।। इति।

'द्विठान्ता इति स्वहान्ताः। ठशब्देन साम्यादर्थाद्वा बिन्दुरुच्यते। 'ठः शून्ये च वृहद्धनौ' इति कोशात्। शून्यं बिन्दुरूपमेव, तस्य द्वित्वं, तेन विसर्गः, स च शक्तिरूप इति। तेन द्विठशब्देनाग्निशक्तिः स्वाहोक्ता' इति राघवभट्टः।

अयमपि मन्त्रः स्वाहान्तत्वात् स्त्रीदेवतात्मकत्वाच्च विद्यापदवाच्यः। सर्वासां विद्यानामियं प्राधान्येन राज्ञीव प्रकाशते, अतो विद्याराज्ञीत्युच्यते। अथवा विद्या ब्रह्मविद्या, ब्रह्मज्ञानोपायत्वेन ब्रह्मविद्या बहुधा; तासु आशु ब्रह्मज्ञानप्रबोधकत्वादियं विद्या राज्ञी श्रेष्ठेत्यर्थः। तथा च श्रीतत्त्वचिन्तामणी, कुलार्णवतन्त्रे च—

उपाया बहवः सन्ति ज्ञातुं ब्रह्म सनातनम्।
तथापि प्रकृतेर्योषात् क्षिप्रं प्रत्यक्षतां व्रजेत्।। इति।

यद्यपि कामशब्देन रेफादयः, वह्निशब्देन ईकारादयः, रतिशब्देन ऊकारादयश्च अभिधीयन्ते; तथाप्यत्र तन्त्रान्तरसंवादात् ककारादय एव गृहीताः। तथा च कालिकोपनिषदि—'अथ हैनां ब्रह्मरन्ध्रे ब्रह्मस्वरूपिणीमाप्नोति सुभगां त्रिगुणामुक्त्वा कामरेफेन्दिराबिन्दुमेलनरूपा, एतत्त्रिगुणामादौ; तदनु कूर्चबीजद्वयं, कूर्चबीजन्तु व्योमषष्ठस्वरविन्दुमेलनरूपं, तदेव द्विरुच्चार्य; भुवनाद्वयं, भुवना तु व्योमज्वलनेन्दिराशून्यमेलनरूपा, तद् द्वयं, दक्षिणे कालिके चेति मुख्यता; तदनु सप्तबीजमुच्चार्य बृहद्भानुजायां समुच्चरेत्।' कामः ककारः, रेफः, इन्दिरा ईकारः, बिन्दुरनुस्वारः, एतेषां मेलनरूपा सुभगा क्रीं बीजमित्यर्थः। सा च सुभगा त्रिगुणा क्रीं क्रीं क्रीं इति। व्योम हकारः, षष्ठस्वरः ऊकारः, बिन्दुरनुस्वारः, एतेषां मेलनरूपं कूर्चबीजं हूं इति। तस्य द्वयम्। व्योम हकारः, ज्वलनं रेफः, इन्दिरा ईकारः, शून्यं विन्दुरनुस्वार इत्यर्थः। एतेषां मेलनरूपा भुवना ह्रीं बीजम्। तस्य द्वयम्। 'दक्षिणे कालिके' इति सम्बोधनान्तं स्वरूपं बृहद्भानुजाया स्वाहा। तथाच काल्यर्चनचन्द्रिकाधृतवीरतन्त्रेऽपि—

ककारं वह्निसंयुक्तं रतिबिन्दुसमन्वितम्।
त्रिगुणञ्च ततः कूर्चयुगं लज्जायुगन्ततः।।
दक्षिणे कालिके चेति पूर्वबीजानि चोद्धरेत्।
वह्निजायावधिः प्रोक्तः कालिकाया मनुर्मतः।। इति।

मन्त्रार्थमाह तन्त्रसारधृतयामले—

ककाराज्जलरूपत्वात् केवलं मोक्षदायिनी।
ज्वलनार्णसमायोगात् सर्वतेजोमयी शुभा।।
मायात्रयेण देवेशि सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
बिन्दूनां निष्कलत्वाच्च कैवल्यफलदायिनी।।
बीजत्रया शाम्भवी सा केवलं ज्ञानचित्कला।
शब्दबीजद्वयेनैव शब्दराशिप्रबोधिनी।।
लज्जाबीजद्वयेनैव सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
सम्बोधनपदेनैव सदा सन्निधिकारिणी।
स्वाहया जगतां माता सर्वपापप्रणाशिनी।। इति।

माया ईकारः। शब्दबीजं हूं बीजम्। मन्त्राक्षरैरङ्गविभागमाह रामानन्दतीर्थस्वामिविरचित-तन्त्रसारपरिशिष्टधृतोत्तरातन्त्रे—

क्रींकारो मस्तकं देवि क्रींरश्च ललाटकम्।
नेत्रत्रयञ्च क्रींकारो हूंकारेण च नासिका।।
हूंकारो मुखपद्मं स्यात् ह्रींकारः कर्णयुग्मकम्।
ह्रींकारेण भवेद् ग्रीवा दकारश्चिबुकं भवेत्।।
क्षिकारेण भवेद्दन्तो णेकारेणोष्ठयुग्मकम्।
काकारेण स्तनद्वन्द्वं लिकारः पृष्ठदेशकः।।
केकारेण भवेद्बाहुः क्रींकारेणोदरं भवेत्।
क्रींकारो नाभिदेशः स्यात् क्रींकारश्च नितम्बकः।।
हूंकारो योनिरूपः स्यात् हूंकारेणोरुयमकम्।
ह्रींकारो जानुयुग्मं स्यात् ह्रींकारो गुल्फदेशकः।।
स्वाशब्देन पदद्वन्द्वं हाशब्दैर्नखरं तथा।

अन्येषामङ्गानामेष्वन्तर्भावः।

मन्त्रार्थं देवतारूपचिन्तनं परमेश्वरि।
मन्त्रात्मकस्य देहस्य मन्त्रवाच्येन देवता।।
वाच्य-वाचकभावेन अभेदो मन्त्रदेवयोः।
मन्त्रवाच्या देवता च मन्त्रो हि वाचकः स्मृतः।।
वाचकेऽपि च विज्ञाते वाच्य एव प्रयीदति।

इति शाक्तानन्दतरङ्गिनीधृतयामलवचनान्मन्त्रदेवतयोरैक्यभावनायाम् उत्तरातन्त्रोक्तवचनक्रमेण मन्त्रस्य तत्तदक्षरैर्देवतायास्तत्तदिन्द्रियाणां परिकल्पनं कर्त्तव्यम्। वस्तुतस्तु देवताया मन्त्रात्मकमेकं रूपं विद्यते। तथाच वामकेश्वरतन्त्रस्य सेतुबन्धाख्यटीकायां भास्कररायेणोक्तम्—'उपास्यायाः परमेश्वर्य्यास्त्रीणि रूपाण्युपास्तियोग्यानि, स्थूलं सूक्ष्मं परञ्चेति। तत्राद्यं करचरणादावयवशीलं मन्त्रसिद्धिमतां चक्षुरिन्द्रियपानीन्द्रिययोर्ग्राह्यम्। ....द्वितीयं मन्त्रात्मकं पुण्यवतां श्रवणेन्द्रिय-वागिन्द्रिययोर्योग्यम्। ....तृतीयं वासनात्मकं पुण्यवतां मनसो योग्यम्। ....एतत्त्रितयातीतन्तु वाङ्मनसातीतं मुक्तैरहन्तयाऽनुभूयमानमखण्डं रूपम्' इति। विषयस्यास्य बहुवक्तव्यत्वेऽपि ग्रन्थगौरवभिया स्वल्पेनैवोपसंहारः कृतः।।४-६।।

नात्र सिद्धाद्यपेक्षाऽस्ति न वा मित्रारिलक्षणम्।
न वा प्रयासबाहुल्यं न कायक्लेशसम्भवः ।।७।।

इस (बत्तीस अक्षर वाले) मन्त्र में सिद्ध-साध्य आदि अथवा मित्र-अरि-विचार की कोई आवश्यकता ही नहीं है। किसी प्रयासबाहुल्य (अनुष्ठानादि) का तथा शारीरिक कष्ट उठाकर साधन करने की भी आवश्यकता नहीं है।।७।।

टिप्पणी—नात्र सिद्धेत्यदि। अस्मिन् मन्त्रे सिद्धादीनाम् अकथहचक्रोक्त-सिद्ध-साध्य-सुसिद्धारीणाम् अपेक्षा नास्ति। 'न वा मित्रारिलक्षण'मित्यनेन कुलाकुलचक्रविचारोऽपि नास्तीत्युक्तम्। चक्रद्वयकथनेन कस्यापि चक्रस्य विचारो नापेक्षित इति सूचितम्। प्रयासबाहुल्यमिति 'कलौ सङ्ख्या चतुर्गुणा' इति युगसेवापरिश्रमोऽपि नापेक्षितः। न कायक्लेशसम्भव इति योगशास्त्रोक्तविधाने-नासनप्राणायामादिना शरीरक्लेशोऽपि नापेक्षितः। यस्या विद्यायाः स्मरणमात्रेण केवलं जप-मननमात्रेण नरो जीवन्मुक्तो भवति तस्या ब्रह्मस्वरूपत्वात्। अत एव तस्याः सिद्धाद्यपेक्षादिकं नास्तीति भावः। तथाहि काल्यर्चनचन्द्रिकाधृतकामाख्यातन्त्रे—

कालीतारामन्त्रदाने चक्रचिन्तां करोति यः।
का गतिर्विद्यते तस्य निस्तारो विद्यते न वा।।

इति प्रश्नानन्तरम्—

ईश्वर उवाच

अज्ञानाद्यदि वा मोहात् कालीतारामनौ प्रिये।
कृते चक्रादिगणने शुनिविष्ठाकृमिर्भवेत्।।
कल्पान्तेऽपि महादेवि निस्तारो विद्यते न हि। इति।

पुरश्चर्यार्णवधृतदेवीपुराणे—

कालिकायाञ्च तारायां कुल्लुकायां त्रिकूटके।
तथैकाक्षरकूटे च शिवपञ्चाक्षरेऽपि च।।
षडक्षरे तु तस्यैव विष्णोरष्टाक्षरेऽपि च।
विष्णोर्द्वादशवर्णे च रामचन्द्रेऽथ तारके।।
वैष्णवेषु च भैरव्यां सुन्दरीमन्त्रवर्यके।
सारस्वते च बालायां सिद्धादीन्नैव शोधयेत्।। इति।

एतेषु मन्त्रेषु अकथहचक्रोक्तान् सिद्धादीन् सिद्धसाध्यसुसिद्धारीन् नैव शोधयेदित्यर्थः।

केचिदविद्याप्रशस्तिपरोऽयमर्थवाद इति मत्वा चक्रविचारादीनामावश्यकत्वं वदन्ति। अपरे तु—

कालिकायाश्च तारायास्ताराचक्रं शुभं भवेत्।

इति तन्त्रसारधृतवचनात् केवलं नक्षत्रचक्रविचारस्यावश्यकतामाहुः। अरिमन्त्रस्य विशेष-दोषश्रवणात् केचित्साम्प्रदायिका अकथहचक्रविचारं कुर्वन्ति।।७।।

यस्याः स्मरणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।
भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिक् छन्द उदाहृतम्।।८।।
देवता कालिका प्रोक्ता लज्जाबीजन्तु बीजकम्।
शक्तिस्तु कूर्चबीजं स्वादनिरुद्धसरस्वती।।९।।
कवित्वार्थे नियोगः स्यादेवं ऋष्यादिकल्पना।
अङ्गन्यासकरन्यासौ यथावदभिधीयते।।१०।।

जिनके स्मरणमात्र से मानव जीवन्मुक्त हो जाते हैं; उनके इस मन्त्र के ऋषि भैरव हैं, छन्द उष्णिक् है, देवता कालिका हैं, बीज 'ह्रीं' है तथा शक्ति 'हूं' है। इस मन्त्र की उपासना करने से साधक का वाक् कभी भी निरुद्ध नहीं होता अर्थात् मन्त्राधिष्ठातृ देवता काली साधक को वाक्-सिद्धि प्रदान करती हैं। कवित्वार्थ इसका विनियोग किया जाता है। इस प्रकार से इस मन्त्र के ऋषि आदि को कहा गया। अव यथायथ रूप से अङ्गन्यास-कररन्यास को कहा जा रहा है।।८-१०।

टिप्पणी—ऋष्यादिकमाह—भैरव इति। एतन्मन्त्रस्य ऋषिर्भैरवः। तत्तच्छक्तेस्तत्तन्नामधेयः शिव एव भैरवपदवाच्यः। कालिकाया महाकाल एव भैरव ऋषिश्च।

कालिकाया महाकालः सुन्दर्या ललितेश्वरः।

इत्यादिपुरश्चर्यार्णवधृतशक्तिसङ्गमतन्त्रवचनात्। यश्च प्रथममादिपुरुषान्मन्त्रं लव्ध्वा तन्मन्त्रसाधनेन सिद्धो वभूव, स एव तन्मन्त्रस्य ऋषिः। तथाच तन्त्रसारधृतगौतमीये—

महेश्वरमुखाज्ज्ञात्वा यः साक्षात्तपसा मनुम्।
संसाधयति शुद्धात्मा स तस्य ऋषिरीरितः।। इति।

एतत्तु साधारणविषयम्। कालिकायास्तु महेश्वररूपी काल्यभिन्नो महाकाल एव लोकशिक्षार्थं प्रथमं मन्त्रं साधयामास। अतः स एव ऋषित्वं प्राप्तः। महाकालस्य कालीमन्त्रसाधने कर्पूर-स्तवादिकं प्रमाणम्। एतन्मन्त्रस्य छन्द उष्णिक्, देवता दक्षिणकालिका, वीजं लज्जाबीजं ह्रीकारः, शक्तिः कूर्चवीजं हूंकारः, कवित्वार्थे विनियोगः। अत्र कीलकं नोक्तम्। तत्तु श्यामारहस्यधृतकालीक्रमे—

कीकञ्चाद्यवीजन्तु चतुर्वर्गार्थसिद्धये। इति।
आद्यवीजं क्रीं कीलकम्।

'कवित्वार्थे इत्युपलक्षणं, यद्यत् स्वाभिलषितं तदर्थे विनियोगः तन्त्रे विविधफलश्रवणात्। ततो यथेष्टमभिलापः कार्यः' इति श्यामारहस्यकारः। अत एव—

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिक् छन्द उदाहृतम्।
दक्षिणा कालिकादेवी चतुर्वर्गफलप्रदा।।

इति श्यामारहस्यधृतकुलचूडामणिवचने पूर्वोक्तकालीक्रमवचने च चतुर्वर्गफललाभस्मरणात् अभिलापवाक्ये 'चतुर्वर्गसिद्धये विनियोगः' इति साम्प्रदायिकैर्व्यवह्रियते। तन्त्रसारे तु 'पुरुषार्थ-सिद्ध्यर्थे विनियोगः' इति वाक्यं दृश्यते। नायं वाक्यभेदः, यतो धर्मार्थकाममोक्षरूपचतुर्वर्ग एव पुरुषार्थत्वेन प्रसिद्धः। ऋष्यादीनामज्ञाने दोषमाह श्यमारहस्यधृतगौतमीये—

ऋषिच्छन्दोऽपरिज्ञानान्न मन्त्रः फलदो भवेत्।
दौर्बल्यं याति मन्त्राणां विनियोगमजानताम्।। इति।

ऋष्यादिन्यासस्यावश्यकतामाह शाक्तानन्दतरङ्गिन्याम्—

ऋषिच्छन्दोदेवतानां विन्यासेन विना यदि।
करोति साधको यच्च तत्सर्वं विफलं भवेत्।। इति।

न्यासस्थानमाह गौतमीये—

गुरुत्वान्मस्तके चास्य न्यासस्तु परिकीर्तितः।
सर्वेषां मन्त्रतत्त्वानां छादनाच्छन्द उच्यते।।
अक्षरत्वात् पदत्वाच्च मुखे छन्दः प्रकीर्तितः।
सर्वेषामेव जन्तूनां भाषणात् प्रेरणात्तथा।।
हृदयाम्भोजमध्यस्थां देवतां तत्र तां न्यसेत्।

अस्य ऋषेर्मन्त्रद्रष्टृत्वेन गुरुत्वान्मस्तके न्यासः। शाक्तानन्दतरङ्गिन्याम्—

ऋषिं न्यसेन्मूर्ध्नि देशे च्छन्दस्तु मुखपङ्कजे।
देवतां हृदये चैव वीजन्तु गुह्यदेशके।।
शक्तिन्तु पादयोश्चैव सर्वाङ्गे कीलकं न्यसेत्। इति।

ऋष्यादिन्यासे अङ्गुलिनियममाह काल्यर्चनचन्द्रिकाधृतकालीसर्वस्वसम्पुटके—

अङ्गुष्ठञ्च शीर्षदेशे मध्यमानामिके मुखे।
अङ्गुष्ठरहितं देवि हृदि देवं विनिर्दिशेत्।।
तत्त्वाख्यमुद्रया देवि गुह्ये वीजं विनिर्दिशेत्।
शक्तिञ्च विन्यसेद्भद्रे मध्याङ्गुल्या पदद्वये।।
कीलकं विन्यसेद्देवि सर्वाङ्गे तलयोस्तथा। इति।

ऋष्यादिन्यासप्रयोगस्तु कृताञ्जलिः पठेत् अस्य मन्त्रस्य भैरव ऋषिरुष्णिक्छन्दः श्रीदक्षिणकालिका देवता ह्रीं बीजं हूं शक्तिः क्रीं कीलकं चतुर्वर्गसिद्धये विनियोगः। इत्यभिलप्य अङ्गुष्ठेन शिरसि 'ॐ भैरवाय ऋषये नमः'। मध्यमानामिकाभ्यां मुखे 'ॐ उष्णिक्छन्दसे नमः'। अङ्गुष्ठरहिताङ्गुलिभिः हृदये 'श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः'। संलग्नाङ्गुष्ठानामिकारूपतत्त्वमुद्रया गुह्ये 'ॐ ह्रीं बीजाय नमः'। मध्यमाङ्गुल्या पदद्वये 'ॐ हूं शक्तये नमः'। हस्तद्वयतलयोः सर्वाङ्गे 'ॐ क्रीं कीलकाय नमः'।

अनिरुद्धसरस्वतीति विद्याया विशेषणम्। अनिरुद्धा अनर्गला सरस्वती वाग् यया सा अनिरुद्धसरस्वती विद्या। एतद्विद्योपासकस्य मुखादनर्गला गद्यपद्यमयी वाङ् निर्गच्छति। तथाच कर्पूरस्तवे—

तेषां गद्यानि पद्यानि च मुखकुहरादुल्लसन्त्येव वाचः। इति।।८-१०।।

षड्दीर्घभाजा बीजेन प्रणवाद्येन कल्पयेत्।
हृदयाय नमः प्रोक्तं शिरसे वह्निवल्लभा ।।११।।
शिखायै वषडित्युक्तं कवचाय हुमीरितम्।
नेत्रयाय वौषट् स्यादस्त्राय फडिति क्रमः ।।१२।।

सर्वप्रथम ॐ का उच्चारण करके आं, ईं, ऊं, ऐं, औं, अः—इन छः दीर्घ स्वरयुक्त बीज़ से यथाक्रमेण—हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट्, कवचाय

हुं, नेत्रत्रयाय बौषट्, अस्त्राय फट्—अर्थात् इसे प्रयोग में इस प्रकार से करे—

ॐ क्रां हृदयाय नमः। ॐ क्रैं कवचाय हुम्।
ॐ क्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्।
ॐ क्रूं शिखायै वषट्। ॐ क्रः अस्त्राय फट्।

साधक को इस प्रकार से अङ्गन्यास तथा करन्यास करना चाहिये।।११-१२।।

टिप्पणी—अङ्गन्यासकरन्यासावाह—षड्दीर्घभाजेति। षड् दीर्घान् आ-ई-ऊ-ऐ-औ-अः इति दीर्घस्वरान् भजत इति षड्दीर्घभाक्। आदौ भवः आद्यः, प्रणवः आद्यो यस्य, तेन प्रणवाद्येन षड्दीर्घभाजा बीजेन अङ्गन्यासकरन्यासौ कल्पयेदित्यर्थः। अत्र बीजशब्दस्यार्थे मतभेदो दृश्यते। श्रीमत्पूर्णानन्दपरमहंसमते बीजमाद्यबीजं क्रींकारः। तन्त्रसारकारमते ह्रींकारः। श्रीमत्पूर्णानन्दपरमहंसस्तु श्यामारहस्ये कालीतन्त्रवचनमुद्धृत्य 'बीजं मन्त्राद्यबीजं, न तु पारिभाषिकं, तन्त्रान्तरस्वरसात्। स्वतन्त्रेऽपि—

प्रणवञ्चाद्यबीजञ्च षड्दीर्घस्वरभाजितम्।
कुर्यात् षडङ्गविन्यासं मूलखण्डत्रयेण वा।।

इति व्याख्यातवान्। आद्यबीजं मन्त्राद्यबीजं क्रींकारः। पारिभाषिकबीजं ह्रींकारः 'लज्जाबीजन्तु बीजकम्' इति वचनात्। तन्त्रसारकारस्तु 'तेन मायया षडङ्गन्यासः। षड्दीर्घभाजा बीजेन प्रणवाद्येन कल्पयेत्।' वीरतन्त्रे 'दीर्घषट्कयुताद्येन प्रणवाद्येन कल्पयेत् इति वा' इत्युक्तवान्। एतन्मते क्रींकारह्रींकारयोरिच्छाविकल्पः, श्यामारहस्यकारेण तु ह्रींकारो नाङ्गीकृतः। सम्प्रदायभेदेन क्रींबीजेन ह्रींबीजेन च कराङ्गन्यासौ प्रचलितौ। स्वतन्त्रवचने 'मूलखण्डत्रयेण वा' इत्यनेन पक्षान्तरमुक्तम्। तदुक्तं श्यामारहस्ये 'मूलखण्डत्रयद्विरावृत्त्या वा कुर्यात्। आद्यसप्तबीजेन हृदयं, द्वितीयखण्डषडक्षरेण शीर्षं, तृतीखण्डेन शेषाक्षरेण शिखां, पुनराद्यखण्डेन कवचं, द्वितीयखण्डेन नेत्रत्रयं, तृतीयखण्डेनास्त्रम्। इत्थं वा षडङ्गन्यासं कुर्यात्। प्रकारोऽयं कैश्चिद् व्यवह्रियते न वा, न जाने।

षडङ्गानि न्यसेन्मन्त्री त्रिः सकृद्वा यथाक्रमम्।

इति श्यामारहस्यधृतभैरवतन्त्रवचनात् त्रिः सकृद्वा अङ्गन्यासं कुर्यात्। वारत्रये फलबाहुल्यम्। अङ्गन्यासे अङ्गुलिनियमस्तु तन्त्रसारधृतयामले—

हृदयं मध्यमानामातर्जनीभिः स्मृतं शिरः।
मध्यमातर्जनीभ्यां स्यादङ्गुष्ठेन शिखा स्मृता।।
दशभिः कवचं प्रोक्तं तिसृभिर्नेत्रमीरितम्।
प्रोक्ताङ्गुलिभ्यामस्त्रं स्यादङ्गक्लृप्तिरियं स्मृता।। इति।

तिसृभिस्तर्जनीमध्यमानामाभिः।

तर्जनीमध्यमानामा प्रोक्ता नेत्रत्रये क्रमात्।

इति राघवभट्टधृतवचनात्। प्रोक्ताङ्गुलिभ्यां शिरस्यूक्ताभ्यां मध्यमातर्जनीभ्याम्।

तर्जनीमध्यमाभ्यान्तु ततोऽस्त्रं विन्यसेत् प्रिये।

इति भास्कररायधृतदक्षिणामूर्त्तिसंहितावचनात्। प्रयोगस्तु—ॐ क्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ क्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ क्रूं मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ क्रैं अनामिकाभ्यां हुं, ॐ क्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ॐ क्रः करतलपृष्ठाभ्यां फट्। इति करन्यासः। ॐ क्रां हृदयाय नमः इति दक्षहस्ततर्जनीमध्यमाऽनामाभिर्हृदये न्यसेत्। ॐ क्रीं शिरसे स्वाहा इति तर्जनीमध्यमाभ्यां शिरसि न्यसेत्। ॐ क्रैं कवचाय हुं इति हस्तद्वयसर्वाङ्गुलिभिः सर्वाङ्गे न्यसेत्। ॐ क्रैं नेत्रत्रयाय वौषट् इति तर्जनीमध्यमानामाभिः नेत्रत्रये न्यसेत्। ॐ क्रः अस्त्राय फट् इति दक्षहस्ततर्जनीमध्यमाभ्यां वामहस्ततले तालत्रयं दद्यात्। इति षडङ्गन्यासः। नेत्रन्यासे तु स्वकपाले नासिकामूलदेशे तृतीयनेत्रं कल्पयित्वा तर्जन्या दक्षनेत्रे मध्यमया ऊर्द्ध्वनेत्रे अनामया वामनेत्रे न्यसेत्। करन्यासे वामहस्ततले दक्षहस्तपृष्ठेन षष्ठन्यासः, अङ्गन्यासे तु दक्षहस्ततर्जनीमध्यमाभ्यां वामहस्ततले तालत्रयवादनम् इति विशेषः।

करन्यासनियमप्रमाणन्तु प्रपञ्चसारे षष्ठपटले—

अङ्गुलीषु क्रमादङ्गैरङ्गुष्ठादिषु विन्यसेत्।
कनिष्ठान्तासु तद्बाह्यतलयोः करयोः सुधीः।।
अस्त्रेण तालत्रितयम्....................। इति।

इति क्रींबीजेन न्यासप्रयोगः। ह्रींबीजद्वारा न्यासे तु क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः इत्येतेषु ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः इति पठनीयं, अन्यत् सर्वमेकरूपम्।

अत्र 'अङ्गन्यासकरन्यासौ' इति पाठादङ्गन्यासस्यादौ कर्त्तव्यत्वमायाति।

अङ्गन्यासकरन्यासौ मायया दीर्घयाचरेत्।

इति शाक्तानन्दतरङ्गिनीधृतवचनेनापि शाक्तसाधरणपूजाप्रसङ्गे तथाभिहितम्। सत्साम्प्रदायिकैस्तु करन्यास एवादौ क्रियते।

करन्यासं पुरा कृत्वा देहन्यासमतः परम्।
अङ्गन्यासं न्यसेत्पश्चादेप साधारणो विधिः।।

इति राघवभट्टधृतवचनेनापि करन्यासस्याग्रकर्त्तव्यत्वमायातम्। पाठक्रमाच्छाब्दक्रमस्य बलवत्त्वादत्रापि करन्यास एवादौ करणीयः। अङ्गन्यासमन्त्राणां तात्पर्यमाह प्रपञ्चसारे षष्ठपटले—

हृदयं बुद्धिगम्यत्वात् प्रणामः स्यान्नमःपदम्।
क्रियते हृदयेनातो बुद्धिगम्या नमस्क्रिया।।
तुङ्गार्थत्वाच्छिरः स्वे स्वे विषयाहरणे द्विठः।
शिरोमन्त्रेण चोत्तुङ्गविषयाहृतिरीरिता।।
शिखा तेजः समुद्दिष्टा वषडित्यङ्गमुच्यते।
तत्तेजोऽस्य तनुः प्रोक्ता शिखामन्त्रेण मन्त्रिणः।।
कवग्रहण इत्यस्माद्धातोः कवचसम्मतः।
हुंतेजस्तेजसा देहो गृह्यते कवचं ततः।।

नेत्रं दृष्टिः समुद्दिष्टा वौषड् दश।नमुच्यते।
दर्शनं दृशि येन स्यात्तत्तेजो नेत्रवाचकम्।।
असु-त्रसादिकौ (?) धातू स्तः क्षेपचलनार्थकौ।
ताभ्यामनिष्टमाक्षिप्य चालयेत् फट्पदाग्निना।।

राघवभट्टधृतगौतमीये—

इज्यमानो हृदात्मायं हृदये स्याच्चिदात्मकः।
क्रियते तत्परत्वन्तु हृन्मन्त्रेण ततः परम्।।
सर्वज्ञादिगुणोत्तुङ्गे संविद्रूपे परात्मनि।
क्रियते विषयाहारः शिरोमन्त्रेण धीमता।।
हृच्छिरोरूपचिद्धाममयता भावना दृढा।
क्रियते निजदेवस्य शिखामन्त्रेण सादरम्।।
मन्त्रात्मकस्य देहस्य मन्त्रवाच्येन तेजसा।
सर्वतो वर्ममन्त्रेण क्रियतेऽनन्यहंवृतिः।।
यद्ददाति परं ज्ञानं संविद्रूपे परात्मनि।
हृदयादिमयं तेजः स्यादेतन्नेत्रसंज्ञकम्।।
आध्यात्मिकादिरूपं यत्साधकस्य विनाशयेत्।
अविद्याजातमस्त्रं तत्परं धाम समीरितम्।। इति।।११-१२।।

एवं यथाविधिं कृत्वा वर्णन्यासं समाचरेत्।
वर्णन्यासं प्रवक्ष्यामि येन देवीमयो भवेत्॥१३॥
अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ वै हृदयं स्पृशेत्।
ए ऐ ओ औ ततोऽप्यं अः क ख ग घ पुनस्ततः॥१४॥
उक्त्वा च दक्षिणं भुजं स्पृशेत् साधकसत्तमः।
ङ च छ ज समुच्चार्य झ ञ ट ठ ड ढ तथा॥१५॥
इति वामभुजे न्यस्य ण त थ द पुनः स्मरेत्।
ध न प फ ब भ इति दक्षिणजङ्घके न्यसेत्॥१६॥
म य र ल व श ष स ह ळ क्ष वामजङ्घके।
इति वर्णान् प्रविन्यस्य मूलविद्यां समुच्चरन्॥१७॥
सप्तधा व्यापकं कुर्यात् येन देवीमयो भवेत्।
व्यापकत्वेन संन्यस्य ततो ध्यायेत्परां शिवाम्॥१८॥
(पीठन्यासं ततः कुर्याद्येन देवीमयो भवेत्।
हृत्सरोजे सुधासिन्धुमध्ये द्वीपं सुवर्णजम्॥१९॥

परितः पारिजातांश्च मध्ये कल्पतरुं ततः।
तन्मूले हेमनिर्माणं द्वाश्चतुष्टयभूषितम् ॥२०॥
मण्डपं मन्दवातेन पराक्रान्तं सुधूपितम्।
मन्त्रैस्तत्र प्रतिष्ठाप्य तत्र पूजां समाचरेत् ॥२१॥
श्मशानं तत्र सम्पूज्य तत्र कल्पद्रुमं यजेत्।
तन्मूले मणिपीठञ्च नानामणिविभूषितम् ॥२२॥
नानालङ्कारभूषाढ्यं मुनिदेवैश्च भूषितम्।
शिवाभिर्बहुमांसास्थिमोदमानाभिरन्ततः ॥२३॥
चतुर्दिक्षु शवमुण्डाश्चिताङ्गारास्थिभूषिताः।
इच्छा ज्ञाना क्रिया चैव कामिनी कामदायिनी ॥२४॥
रती रतिप्रिया नन्दा मध्ये चैव मनोन्मनी।
ह्सौः सदाशिवेत्युक्त्वा महाप्रेतेति तत्परम् ॥२५॥
पद्मासनाय हृदयं पीठन्यास उदाहृतः।
एवं देहमये पीठे चिन्तयेदिष्टदेवताम्) ॥२६॥

इस प्रकार करांगन्यास करके यथाविधि वर्णन्यास करना चाहिये। अब उस वर्ण-न्यास को कहता हूँ, जिसे करके साधक देवीमय हो जाता है। अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ—इस मन्त्र से हृदय में, ए ऐ ओ औ अं अ: क ख ग घ—मन्त्र से दाहिने बाहु में, ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ—मन्त्र से वाम बाहु में, ण त थ द ध न प फ ब भ—मन्त्र से दक्षिण जंघा में, म य र ल व श ष स ह ळ क्ष—मन्त्र से वाम जंघा में न्यास करके मूल विद्या का सम्यक् रूप से उच्चारण करते हुये सात बार व्यापक न्यास करना चाहिये, जिससे साधक देवीमय हो जाता है। व्यापक न्यास करने के उपरान्त परा शिवा का ध्यान करना चाहिये।

तदनन्तर पीठन्यास करे। इससे साधक देवस्वरूप होता है। अब पीठन्यास बतलाया जा रहा है। साधक अपने हृदयकमल में सुधासमुद्र के मध्य सुवर्णद्वीप की कल्पना करे। इस द्वीप के चारो ओर पारिजातवृक्ष हैं तथा मध्य में कल्पवृक्ष शोभायमान है। इसके मूल में स्वर्णमय चार द्वारों से शोभित मण्डप स्थित है। वहाँ मृदु मन्द पवन आन्दोलित है तथा वह धूप-गन्ध से सुगन्धिपूर्ण भी है। वहाँ पर मन्त्र द्वारा देवता की प्रतिष्ठा करके पूजा करनी चाहिये। वहाँ श्मशान में पूजा करके कल्पवृक्ष की पूजा करनी चाहिये। उस कल्पवृक्ष के मूल में विविध मणियों से भूषित, नाना अलकारों से शोभित मणिपीठ में मुनि तथा देवगण अवस्थान करते हैं। उसके चारो ओर बहुत मांस तथा अस्थि के भोजन से परितृप्त शिवागण विराजित रहती हैं। चारो ओर

शवमुण्ड, चिताकाष्ठ तथा अस्थि-विभूषिता इच्छा-ज्ञाना-क्रिया, कामिनी, कामदायिनी, रति, रतिप्रिया, मध्यदेश में मनोन्मनी अवस्थान करती हैं। इन सबकी पूजा करके 'ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः' मन्त्र से पूजा करनी चाहिये। यही है—पीठन्यास। देहमय आसन में इस प्रकार से इष्ट देवता का साधन-चिन्तन करना चाहिये।।१३-२६।।

टिप्पणी—वर्णन्यासमाह—वर्णन्यासमित्यादिना। वर्णन्यासस्तु द्विविधः—सबिन्दुवर्णन्यासो निर्बिन्दुवर्णन्यासश्च। तत्र निर्बिन्दुवर्णन्यास एव कालीतन्त्रसम्मतः। तथाच श्यामारहस्यकारेण कालीतन्त्रवचनान्युद्धृत्य 'अथैतल्लिखितवचनस्वरसात् बिन्दुरहित एव वर्णन्यासः। विरूपाक्षमते तु सबिन्दुरेव, इत्यस्य प्रमाणमुक्तं कवचे लिपिन्यासे' इत्युक्तम्। तन्त्रसारकारेण तु सबिन्दुलिपिन्यासं लिखित्वा 'कालीतन्त्रे पुनर्निर्बिन्दुः। यथा—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ वैं हृदयं स्पृशेत् इत्यादि। किन्तु 'सबिन्दून् वा न्यसेदेतान् निर्बिन्दून् वाथ वर्णवान्' इत्याचार्यपरिगृहीतभैरवीय-वाक्यादुभयमेव युक्तम्' इति लिखितम्। राघवेन्द्रभट्टाचार्यस्तु नित्यनैमित्तिककाम्यार्चनपद्धतौ सबिन्दुलिपिन्यासं उक्त्वा 'इदमत्रावधेयं, अयं यबिन्दुवर्णन्यासस्तु विरूपाक्षसम्मतः' इत्युक्तम्। श्यामारहस्यकारेणापि न्यासप्रयोगे सबिन्दुलिपिन्यास एव लिखितः। विरूपाक्षसम्मत-सबिन्दुवर्णन्यासप्रमाणन्तु श्यामारहस्ये विरूपाक्षकृतकालीकवचे द्रष्टव्यम्। एतावता सबिन्दुक-निर्बिन्दुकयोरिच्छाविकल्पेऽपि सबिन्दुकन्यास एव शिष्टैर्व्यवह्रियते। कालीतन्त्रसम्मतनिर्बिन्दुक-न्यासस्य व्यवहारो विरलतमः।

तथाच हरतत्त्वदीधितौ 'सबिन्दुनिर्बिन्दूभयस्य शास्त्रसिद्धत्वादिच्छावैकल्पिकेऽपि साम्प्रदायिकाः सबिन्दुमेव व्यवहरन्ति' इति। वहुषु हस्तलिखितकालीतन्त्रेषु लिपिन्यासे सबिन्दुकः पाठो दृश्यते, स तु लिपिकरप्रमादोऽवगन्तव्यः, तन्त्रसार-श्यामारहस्य-नित्यनैमित्तिककाम्यार्चन-पद्धतिकाराणामुक्तेर्विरोधात्। हरतत्त्वदीधितिकारेणापि तथाविधं कालीतन्त्रं दृष्ट्वा यद् 'इह वर्णन्यासः कालीतन्त्रादौ सबिन्दुरुक्तः कङ्कालमालिनीतन्त्रादौ तु निर्बिन्दुरिति' इदं लिखितं तद् भ्रान्तिपूर्णम्। स्त्रीशूद्रयोस्तु निर्बिन्दुर्वर्णन्यासः। तदुक्तं ताराहस्यधृततारार्णवे—

नादबिन्दुसमोपेतं सर्ववर्णे व्यवस्थितम्।
स्त्रीशूद्रयोरेतदेव नादबिन्दुविवर्जितम्।। इति।

कालीतन्त्रसम्मतनिर्बिन्दुकन्यासप्रयोगो यथा—हृदये अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ नमः, दक्षभुजे ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ नमः, वामभुजे ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ नमः, दक्षजङ्घायां ण त थ द ध न प फ ब भ नमः, वामजङ्घायां म य र ल व श ष स ह क्ष नमः। सबिन्दुकन्यासे तु प्रतिवर्णे अनुस्वारं संयोज्य न्यसेदिति विशेषः। सर्वत्र दक्षहस्ताङ्गुष्ठानामिकाग्रसम्मेलनरूपतत्त्वमुद्रया न्यसेत्। दक्षभुजे तु दक्षहस्ततत्त्वमुद्रया न्यासा-सम्भवात् वामहस्ततत्त्वमुद्रया न्यसेत्। तथाच गौतमीये—

मनसा वा न्यसेन्न्यासान् पुष्पेणैवाथ वा मुने।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां वा अन्यथा विफलं भवेत्।।

इत्यत्र भास्कररायमते अन्तर्यागन्यासे मनसा, देवतागात्रे पुष्पेण, स्वगात्रे अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां न्यसेत्। केचित्तु वाशब्दान् इच्छाविकल्पार्थान् मन्यन्ते। स्वगात्रे वाह्यन्यासे मनसा न्यासस्यासङ्गतत्वात् इच्छाविकल्पार्थः सुष्ठुतया न प्रतिभाति। अतो भास्कररायमतमेव समीचीनम्।

एवमन्तः प्रविन्यस्य मनसातो बहिर्न्यसेत्।

इत्यगस्त्यसंहितावचनेन—

स्वदेहेऽनामया कार्यः पुष्पेण सुरमूर्त्तिषु।

इति मेरुतन्त्रवचनेन चामुमेवार्थं प्रकटयति। व्यापकन्यासमाह—मूलविद्यामित्यादि। मूलमन्त्रमुच्चरन् करतलाभ्यां शिर आदि पादान्तं पुनः पादादिशिरोऽन्तं मार्जयेदित्येको व्यापकन्यासः। इत्थं सप्तधा कुर्यात्। प्रतिवारं मूलमन्त्रमुच्चरेत्। तथाच हरतत्त्वदीधितिधृतनिगमकल्पलतावचनं—

शीर्षादिपादपर्यन्तं पादादिशीर्षकं ततः।
कराभ्यां मार्जयेद्गात्रं व्यापकन्यास ईरितः।। इति।

तत्रैव मूलमन्त्रस्य प्रणवपुटितं सृष्ट्यादिभेदेन न्यासस्य विविधत्वमधिकारिनिरूपणञ्च प्रदर्शितम्। तन्त्रसारमतावलम्बिनस्तु तानि न व्यवहरन्ति। येन देवीमयो भवेदिति। 'नादेवी देवमर्चयेत्, देवोभूत्वा देवीं यजेत्' इत्यादि वचनादात्मनो देवतात्वापादनायैव न्यासाः करणीयाः।

न्यासप्रदन्तु 'असु क्षेपणे' इति धातुना निष्पन्नं, तेन स्वदेहे मूलदेवतायाः तद्रश्मिदेवतानाञ्च न्यसनं न्यासः। तथाच सौभाग्यभास्करे भास्कररायवाक्यं 'न्यासो नाम तत्तद् देवतानां तत्तदवयवेष्ववस्थानम्। अवस्थितत्वेन भावनेति यावत्' इति। न्यापकन्यासेन तु मूलमन्त्रोच्चारणपूर्वकहस्ततलद्वयमार्जनद्वारा सर्वेष्ववयवेषु मूलदेवताया अवस्थापनादात्मनो देवतामयत्वं सम्भावितम्।

अस्मात्पुस्तकादन्यत्रादर्शनात् निबन्धेष्वनुद्धृतत्वात्, हरतत्त्वदीधितौ 'यद्यपि कालीतन्त्रवीरतन्त्रयोरनिरुद्धसरस्वतीविद्यापूजायां मातृकान्यासो नोक्तस्तथापि निगदितभूरिवचनैकवाक्यत्वादन्यत्र निषेधाभावाच्च तस्यामपि स कर्त्तव्यः। अन्यथा तत्रानुक्तपीठन्यासबीजन्यासतत्त्वन्यासानामवश्यकर्त्तव्यत्वेऽपि तत्परिहारापत्तिः' इति लेखनाच्च बन्धनीस्था ऊनविंशादारभ्य षड्विंशपर्यन्तमष्टौ पीठन्यासश्लोकाः प्रक्षिप्ता इति मत्वा न व्याख्यायन्ते। निबन्धेषु कालीपूजायां कुमारीकल्पोक्तः पीठन्यासो दृश्यते।।१३-२६।।

ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि स्मरणाच्छिवतां व्रजेत्।
करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्।।२७।।
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम्।
सद्यश्छिन्नशिरःखड्गवामाधोद्ध्वकराम्बुजाम्।।२८।।
अभयं वरदञ्चैव दक्षिणोद्ध्वधपाणिकाम्।
महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बरीम्।।२९।।

कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम् ।
कर्णावतंसतानीतशवयुग्मभयानकाम् ॥३०॥
घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयोधराम् ।
शवानां करसङ्घातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम् ॥३१॥
सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम् ।
घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम् ॥३२॥
बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रितयान्विताम् ।
दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम् ॥३३॥
शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम् ।
महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम् ॥३४॥
शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम् ।
सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम् ॥३५॥
योगिनीचक्रसहितां कालिकां भावयेत् सदा ।
एवं सञ्चिन्तयेत् कालीं सर्वकामार्थसिद्धये ॥३६॥

अब इन महादेवी कालिका का ध्यान कहा जा रहा है, जिनके स्मरणमात्र से साधक को शिवत्व की प्राप्ति हो जाती है। देवी का मुखमण्डल भयंकर है। अभक्तों के लिये देवी भयंकरी हैं। उनकी केशराशि मुक्त है, बाल उन्मुक्त फहरा रहे हैं। दिव्य दक्षिण कालिका चार हाथों वाली हैं। उनके बाँयें ऊपरी हाथ में खड्ग है, नीचे वाले हाथ में सद्यः कटा (रक्त टपकता) मुण्ड है। दाहिने ऊपरी हाथ में अभय मुद्रा तथा नीचे वाले में वर मुद्रा शोभित है। देवी महामेघ के समान श्यामवर्णी हैं। वे दिगम्बरा हैं। उनके गले में रक्त टपक रही मुण्डों की माला सुशोभित है। दो शव कानों के आभूषण हैं, जिससे देवी भयानक लग रही हैं। उनके दात भी भयानक हैं, मुख भीषण है, स्तनयुगल स्थूल है। शवों की बाहुओं से उनकी कमर सजी हुई है। मुखमण्डल हास्यमय है। गण्डदेश से रक्तधारा टपक रही है और उससे मुखमण्डल विस्फुरित है। महारौद्री भयानक ध्वनि कर रही हैं। वे श्मशानभूमि में निवास करती हैं। उदयकालीन सूर्य के समान ज्योति से उनके नेत्रद्वय शोभित हैं। दन्तराशि उच्च है। दाहिनी ओर मुक्त लम्बायमान केशराशि सुशोभित है। शवरूप महादेव के हृदय के ऊपर वे अवस्थिता हैं। महाकाल (महादेव) के साथ विपरीत रमण में निरत हैं। चारो ओर भयंकर शब्द करती शिवागण से वे घिरी हुई हैं। सुख से मुखमण्डल प्रसन्न है। ईषत् हास्य (मुस्कान से) मुखपक्ष उल्लसित है, उद्भासित है। सभी कामना एवं अर्थसिद्धि के लिये इस प्रकार से काली का चिन्तन करना चाहिये।।२७-३६।।

टिप्पणी—ध्यानमाह—करालेत्यादि। करालवदनां—करालं दन्तुरं उन्नतदंष्ट्राविशिष्टम् अथवा अभक्तानां भयानकं वदनं यस्यास्ताम्। 'करालो दन्तुरे तुङ्गे भीषणे चाभिधेयवत्' इति मेदिनी। अत एव घोरां भयानकमूर्त्तिमित्यर्थः। 'दारुणं भीषणं भीष्मं भीमं घारं भयानकम्' इत्यमरः। मुक्तकेशीं—मुक्ता विगलिताः केशा यस्यास्ताम्। चतुर्भुजाम्—चत्वारो भुजा यस्यास्ताम्। कालिकां दक्षिणाम् इति 'दक्षिणकालिका' इति संज्ञामभिधातुं भिन्नपदत्वेनेदमुक्तम्। तथाच निर्वाणतन्त्रे दशमपटले—

दक्षिणस्यां दिशि स्थाने संस्थितश्च रवेः सुतः।
कालीनाम्ना पलायेत भीतियुक्तः समन्ततः।।
अतः सा दक्षिणा काली त्रिषु लोकेषु गीयते।
पुरुषो दक्षिणः प्रोक्तो वामा शक्तिर्निगद्यते।।
वामया दक्षिणं जित्वा महामोक्षप्रदायिनी।
अतः सा दक्षिणानाम्ना त्रिषु लोकेषु गीयते।।
निर्गुणः पुरुषः काल्या सृज्यते लुप्यते यतः।
अतः सा दक्षिणानाम्ना त्रिषु लोकेषु गीयते।। इति।

दिव्यां—अलौकिकां लौकिकेन्द्रियाद्यविषयामिति यावत्। तथा चार्जुनं प्रति भगवद्वाक्यम्—

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।। इति।

गुहचिन्तामणौ च—

कृत्वा देव्याः पदाम्भोजदर्शनं शिवचक्षुषा। इत्यादि।

शिवचक्षुषा ज्ञानचक्षुषा, भौतिकचक्षुषो दर्शनायोग्यत्वात्। मुण्डमालाविभूषिताम्—असुराणां मुण्डनिचयै रचितमालया विभूषितां शोभायुक्तामित्यर्थः। यद्यप्यत्र मुण्डानां सङ्ख्यानिर्णयो नास्ति, तथापि विरूपाक्षकृतध्याने पञ्चाशन्मुण्डदर्शनात् तदेव चिन्तनीयम्। तद्यथा—

पञ्चाशन्मुण्डघटितमालाशोणितलोचनाम् । इति।

मालेयं सद्यश्छिन्न रक्तभूषितमुण्डानाम् अन्योन्यकेशैर्ग्रथिता, न तु सूत्रान्तरेण; पादपद्मप्रलम्बिता च। इहानुक्तत्वेऽपि ताराध्याने तथादर्शनात् ताराकाल्योरेकविधत्वाच्च। तथाच एकजटाकल्पधृत-तन्त्रचूडामणौ—

सद्यश्छिन्नगलद्रक्तनृमुण्डै रक्तभूषितैः।
अन्योन्यकेशग्रथितैः पादपद्मप्रलम्बितैः।।
पञ्चाशद्भिर्महामालाशोभितां परमेश्वरीम्। इति।

सद्यश्छिन्नशिरःखड्गवामाधोर्द्ध्वकराम्बुजाम्—सद्यः सपदि छिन्नं यच्छिरः तच्च खड्गश्च तौ वामयोरधोर्द्ध्वकराम्बुजयोर्यस्यास्ताम्। शिरस्तु वामाधःकरे खड्गस्तु वामोर्द्ध्वकरे इति यथाक्रममुपदेशः। अत्र 'अध' इत्यदन्तः शब्दः, 'सर्वे सान्ताः पक्षे अदन्ताः' इति न्यायात्।

अथवा विसर्गलोपे सन्धिश्छान्दसः। अभयं वरदञ्चैव दक्षिणोद्ध्वधिपाणिकाम्—अत्र 'प्राप्य' इति पदमध्याहार्यम्। तथाच अभयं अभयमुद्रां वरदं वरदमुद्राञ्च प्राप्य दक्षिणावद्ध्वधिपाणिकौ यस्यास्ताम्। अत्रापि 'अध' शब्दोऽदन्तः। अत्र एवशब्द एवमर्थवाचकः, अव्ययानामनेकार्थत्वात्। अथवा 'इवि व्याप्तौ' इति भ्वादिगणीयेवधातोराङ्पूर्वात् कर्त्तर्यचि पृषोदरादित्वात्रलोपे 'एव' इति पदं सिद्धम्। तथाहि अभयं वरदञ्चैवौ प्राप्तौ दक्षिणोद्ध्वधिपाणिकौ यस्यास्ताम्। अत्रापि दक्षिणोद्ध्वपाणौ अभयमुद्रा, दक्षिणाधःपाणौ वरदमुद्रा, इति क्रमः। एवं वामाधःपाणौ सद्यश्छिन्नं मुण्डं, वामोद्ध्वपाणौ खड्गः, दक्षिणोद्ध्वपाणौ अभयमुद्रा, दक्षिणाधःपाणौ वरदमुद्रा इत्यायुधचिन्ता। अभयवरदमुद्रयोर्लक्षणं तन्त्रसारधृतं यथा—

अधःस्थितो दक्षहस्तः प्रसृतो वरमुद्रिका।
ऊद्ध्वीकृतो वामहस्तः प्रसृतोऽभयमुद्रिका।। इति।

प्रसृतत्वं सङ्कोचनराहित्यम्। श्लिष्टाङ्गुलिसङ्कुचितो दक्षहस्तः अधःस्थितः उत्तानभावेनैव निम्नाभिमुखत्वेन स्थितश्चेत्तदा वरमुद्रा। लौकिकव्यवहारेऽपि कस्यचिद्वस्तुनो दाने दक्षहस्तस्य तथाकरणं दृश्यते। एवं श्लिष्टाङ्गुलिरसङ्कुचितो वामहस्त ऊद्ध्वमुखत्वेन स्थितश्चेदभयमुद्रा स्यात्। साधकस्य मुद्राप्रदर्शनकाले वामहस्ते, देव्यास्तु दक्षहस्तेऽभयमुद्रेति विशेषः। महामेघप्रभां श्यामां—महामेघस्य प्रभेव प्रभा यस्यास्तां, मध्यमपदलोपीसमासः। अत्र महापदप्रयोगात्, महाकालस्तुतौ 'स्वच्छन्दं ध्वान्तधाराधररुचिरुचिरे' इत्यत्र ध्वान्तपदप्रयोगात्, तथा विरूपाक्षोक्त-ध्याने 'नीलाञ्जनचयप्रख्याम्' इत्यत्र नीलादिपददर्शनाच्चातीव कृष्णवर्णेति सूचितम्। देव्याः कृष्णवर्णत्वे हेतुमाह महानिर्वाणतन्त्रे त्रयोदशोल्लासे—

श्वेतपीतादिको वर्णो यथा कृष्णे विलीयते।
प्रविशन्ति तथा काल्यां सर्वभूतानि शैलजे।।
अतस्तस्याः कालशक्तेर्निर्गुणाया निराकृतेः।
हिताया: प्राप्तयोगानां वर्णः कृष्णो निरूपितः।। इति।

'श्यामाम्' इत्यनेन—

शीतकाले भवेदुष्णा चोष्णकाले च शीतला।
प्रतप्तकाञ्चनाभासा श्यामा स्त्री परिकीर्त्तिता।।

इत्येतद्वचनाक्रान्तत्वं ज्ञापितं, न तु श्यामवर्णत्वम्; अतः सत्रसामञ्जस्यमिति। दिगम्बरीं—दिक् अम्बरं परिधानवसनं यस्यास्ताम्। 'अम्बरं व्योम्नि वाससि' इत्यमरः। बहुव्रीहिसमासे गौरादित्वात् ङीष्। एतेन 'नग्ना' इति व्यञ्जितम्। कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम्—कण्ठे अवसक्ता लग्ना या मुण्डानाम् आली श्रेणी मुण्डमालेति यावत्, तस्या गलन्ति यानि रुधिराणि तैश्चर्चितामनुलिप्तामिति यावत्। कर्णावतंसतानीतशवयुग्मभयानकाम्—कर्णयोरवतंसताम् अलङ्कारतां नीतं प्रापितं यच्छवयुग्मं मृतनरशिशुदेहयुगलं तेन भयानकाम्। शरयुग्मेति पाठे शरयुग्मं बाणयुग्ममित्यर्थः। 'घोवाणावतंसा' इति 'प्रेतकर्णावतंसा' इति च—

शकुन्तपक्षसंयुक्तवाणकर्णविभूषिताम् । इति,
विगतासुकिशोराभ्यां कृतकर्णावतंसिनीम्।

इति दर्शनादुभयमेव पाठः' इति तन्त्रसारकारः। शवयुग्मेति पाठस्य प्रयासबाहुल्यं दृश्यते। वस्तुतस्तु ध्यानमन्त्रपाठे एकतर एव पाठ्यः, ध्याने तु कर्णाधः प्रेतयुग्मं कर्णोर्द्ध्वे वाणयुग्मं ध्येयम् इति वृद्धोपदेशः। घोरदंष्ट्रां—घोरा बृहत्तरत्वाद् भीमा दंष्ट्रा यस्यास्ताम्। करालास्यां—करालः ललज्जिह्वा आस्यं मुखे यस्यास्ताम्। 'करालस्तीक्ष्णखड्गे च ललज्जिह्वा-भयानके' इति कोषः। पीनोन्नतपयोधरां—पीनौ स्थूलौ उन्नतौ च पयोधरौ स्तनौ यस्यास्तादृशीम्। शवानां करसङ्घातैः कृतकाञ्चीं—शवानां करसङ्घातैः छिन्नकरसमूहैः कृता काञ्ची मेखला यया तादृशीम्। तथाच 'मृतहस्तसहस्रैस्तु बद्धकाञ्चीं दिगम्बरीम्' इति। हसन्मुखीं—हसत् हास्ययुक्तं मुखं यस्यास्तादृशीम्। सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननां—सृक्क-सृक्कणी-सृक्किणीतिशव्दाः ओष्ठाधरयोः प्रान्तभागद्वयवाचकाः तत्र सृक्कशव्दोऽदन्तो नान्तश्च। सृक्कद्वयात् ओष्ठाधर-प्रान्तभागद्वयात् गलन्त्यौ ये रक्तधारे पीतावशिष्टासुरशोणितानां प्रवाहौ ताभ्यां विस्फुरितं प्रकाशितम् आननं यस्यास्तादृशीम्। घोररावां—घोरः असुराणां अभक्तानाञ्च भयप्रदः रावः शव्दः यस्यास्तादृशीम्। महारौद्रीं—अतिशयोग्राम्। 'रौद्रन्तूग्रममी त्रिषु' इत्यमरः। श्मशानालय-वासिनीम्—श्मशानं शवदाहस्थानमेव आलयः वासस्थानं तत्र वस्तुं वासं कर्तुं शीलं यस्या-स्तादृशीम्। तथाहि 'श्मशानवह्निमध्यस्थाम्' इत्यादि। बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रितयान्वितां—बालश्चासौ अर्कश्चेति बालार्कः प्रथमोदितसूर्य इत्यर्थः, तस्य मण्डलमिव आकारो यस्य तादृशेन लोचनत्रितयेन प्रातरुदितसूर्यमण्डलसदृशरक्तवर्णैस्त्रिभिर्नेत्रैरित्यर्थः अन्वितां युक्ताम्। दन्तुरां—उपर्युपरिदन्तविशिष्टाम्। दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयां—दक्षिणं दक्षिणाङ्गं व्याप्नोतीति दक्षिणव्यापी, शिवहृदि पदार्पणभङ्ग्या केशसमूहस्य दक्षिणाङ्गव्यापकत्वं प्रतीयते, मुक्तः वेणीबन्धरहितः अत एव आलम्बी—आ सम्यक् लम्वते इत्यालम्बी लम्बमान इत्यर्थः, एवम्भूतः कचोच्चयः केशसमूहो यस्यास्ताम्। शवरूपमहादेवहृदयोपरिसंस्थितां—शवस्य रूपमिव रूपं यस्य स चासौ महादेवश्चेति शवरूपमहादेवः, तस्य हृदयोपरिसंस्थिताम्। वस्तुतः शिवस्य शवत्वं न, रूपपदस्याव्यावर्त्तकत्वापत्तेः, योगिनीतन्त्रोक्तध्याने 'योगनिद्राधरं शम्भुम्' इति दर्शनाच्च। कुब्जिकातन्त्रे देव्या दक्षिणपादं शवहृदये उक्तम्। तथाहि—

शवस्य हृदये चैव दखपादनिषेविताम्। इति।

योगिनीतन्त्रे वामपादं शवहृदये उक्तं, यथा—

वामपादं शवहृदि दक्षिणां लोकलाञ्छिताम्। इति।

एवमुभयप्राप्ते गुरूपदेशादेकतरमवधार्य चिन्तनीयम्। तथाहि गुप्तसाधनतन्त्रे षष्ठपटले—

आलीढं कीदृशं नाथ प्रत्यालीढन्तु कीदृशम्।
कथं सा दक्षिणा काली श्मशानालयवासिनी।।
आलीढपादा सा देवी प्रत्यालीढा क्षणे क्षणे।
गुरुणा यस्य यत्प्रोक्तं तत्तस्य ब्रह्मसंहितम्।। इति।

अनेन श्मशानालयवासस्यापि कारणमुच्यते। देव्याः शववाहनत्वस्य तोडलतन्त्रे प्रथम-पटले—

या चाद्या परमा विद्या द्वितीया भैरवी परा।
त्रैलोक्यजननी नित्या सा कथं शववाहना।।

इति देवीप्रश्नस्योत्तरे—

या चाद्या परमेशानि स्वयं कालस्वरूपिणी।
श्रीशिवस्य हृदम्भोजे स्थिता संहाररूपिणी।।
अत एव महाकालो जगत्संहारकारकः।
संहाररूपिणी काली यदा व्यक्तस्वरूपिणी।।
तदैव सहसा देवि शवरूपः सदाशिवः।
तत्क्षणाच्चद्धलापाङ्गि सा देवी शववाहना।।

× × × × × × × × × × × × ×

यस्मिन् व्यक्ता महाकाली शक्तिहीनः सदाशिवः।
शक्त्या युक्तो यदा देवि तदैव शिवरूपकः।।
शक्तिहीने शवः साक्षात् पुरुषत्वं न मुञ्चति।। इति।

महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम्—महाकालेन स्वभैरवेण समं सह विपरीतं व्यत्ययेन कृतं यद्रतं सुरतव्यापारः तस्मिन् आतुरां विक्षिप्तचित्तामित्यर्थः। वस्तुतस्तु तदानीं न रतावस्था, किन्तु सदाशिवरूपदिगम्वरमहाकालोपरि दिगम्वरीभावेन देव्याः स्थितत्वादुत्प्रेक्षा इति भावः। किञ्च, शिवशक्तिमिथुनमात्रं विना सृष्ट्यादिकं न सम्भवतीति तान्त्रिकसिद्धान्तः। शिवशक्त्योरविनाभावसम्वन्धेऽपि सृष्ट्यादिव्यापारे शक्तेः क्रियाया अनुभूयमानत्वेन प्राधान्यात् शक्तिरेव सर्वं करोतीति प्रतिभासते; अतः सृष्ट्याद्यर्थं मिथुनभावेऽपि शक्तेरेव प्राधान्यात् अत्र महाकालेन समं देव्याः विपरीतरतावस्था उत्प्रेक्षिता।

शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम्—घोररावाभिः, घोरः रावः शब्दो यासां ताभिः, शिवाभिः श्रृगालैः, 'स्त्रियां शिवा भूरिमायगोमायुमृगधूर्त्तकाः। श्रृगालवञ्चुकक्रोष्टुफेरुफेरवजम्बुकाः' इत्यमरः। 'पुंव्यक्तावपि शिवाशब्दो नित्यं स्त्रीलिङ्ग इत्यर्थः' इत्यमरटीकायां महेश्वरः। चतुर्दिक्षु समन्ततः समन्वितां वेष्टितामित्यर्थः। सुखप्रसन्नवदनां—सुखं सुखकरं भक्तानां आनन्ददायकमित्यर्थः, प्रसन्नं प्रफुल्लञ्च वदनं यस्यास्ताम्। स्मेराननसरोरुहां—स्मेरं विकसितम् आननसरोरुहं मुखपद्मं यस्यास्तां, विकसितपद्मतुल्यसुन्दरमुखीमित्यर्थः। 'योगिनीचक्रसहितां कालिकां ीवयेत् सदा' इति पाठस्तु पुस्तकान्तरेषु निबन्धेषु च अनुपलम्भात् प्रक्षिप्त इति मत्वा अत्रोपेक्षितः। एवं सञ्चिन्तयेत् कालीं सर्वकामार्थसिद्धये—सर्वेषां कामानाम् अर्थानाञ्च सिद्धये एवं एवम्प्रकारां कालीं सञ्चिन्तयेत् ध्यायेत्। अत्र कामार्थशब्दाभ्यां तदितरधर्ममोक्षरूपपुरुषार्थद्वयमपि गृह्यते कालिकोपासनेन चतुर्वर्गप्राप्तिश्रवणात्। अत एतद्ध्यानेन धर्मार्थकाममोक्षरूपचतुर्वर्गप्राप्तिः स्यादित्यर्थः। तन्त्रसारे तु कालीतन्त्रोक्तध्याने 'सर्वकामार्थसिद्धये'

इत्यत्र 'सर्वकामसमृद्धिदाम्, श्मशानालयवासिनीम्' एतत्पाठद्वयं दृश्यते। एतत्पाठद्वयमपि प्रचरद्रूपम्। 'श्मशानालयवासिनीम्' इति पाठे तु पौनरुक्त्यवारणाय ब्रह्मानन्दस्वामी एवमाह— श्मशानं रुद्रस्थानं, तत्तु नित्यं कैलासस्य दक्षिणशृङ्गे, अत्रैव कालिकालयः, तत्र वासिनीम्' इति।।२७-३६।।

अथार्चनविधिं वक्ष्ये देव्याः सर्वसमृद्धिदम्।
येनानुष्ठितमात्रेण स्वयं भैरवरूपवान् ।।३७।।

अब देवी की सर्वसमृद्धिदायिनी पूजनविधि को कहता हूँ, जिसके अनुष्ठानमात्र से साधक साक्षात् भैरवस्वरूप हो जाता है।।३७।।

येनानुष्ठितमात्रेण भवाब्धौ न निमज्जति।
अनेकहेमरत्नादिमाणिक्यवरसिद्धिदम् ।।३८।।

जिसके अनुष्ठानमात्र से साधक को संसारसमुद्र में निमज्जित नहीं होना पड़ता, जिसके अनुष्ठानमात्र से प्रचुर स्वर्ण, श्रेष्ठ रत्नादि एवं माणिक्यादि की सिद्धि प्राप्त हो जाती है।।३८।।

इन्द्रादिसुरवृन्दानां साधनैकफलप्रदम्।
विपक्षकुलसंहारकारणं पौरुषप्रदम् ।।३९।।

यह अनुष्ठान इन्द्रादि देवगण की साधना का एकमात्र फल देने वाला है। शत्रुओं के संहारार्थ यह पौरुष प्रदान करता है।।३९।।

शान्तिकं पौष्टिकञ्चैव वशीकरणमुत्तमम्।
मारणोच्छेदजनकमाकृष्टिकरमुत्तमम् ।।४०।।

शान्ति, पुष्टि, वशीकरण, मारण, उच्चाटन, आकर्षण आदि कर्मों के लिये यह अनुष्ठान सर्वश्रेष्ठ है।।४०।।

समस्तशोकशमनमानन्दाब्धौ निमज्जनम्।
चतुःसमुद्रपर्यन्तमेदिनीसाधनोत्तमम् ।।४१।।

इसके अनुष्ठान से सभी शोक दूर हो जाते हैं। यह आनन्द के सागर में डूबोकर रखता है। यह चारो समुद्रों सहित समस्त पृथ्वी की प्राप्ति का श्रेष्ठ उपाय है।।४१।।

स्त्रीरत्नकुलसन्दायि पुत्रपौत्रविवर्द्धनम्।
आदौ यन्त्रं प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामरतां व्रजेत् ।।४२।।

यह अनुष्ठान श्रेष्ठ स्त्रीरत्न प्रदान करके पुत्र-पौत्रों की वृद्धि कराता है। पहले मैं यन्त्र को कहूँगा, जिसको जानकर देवत्व तक प्राप्त हो जाता है।।४२।।

आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणं तद्बहिर्न्यसेत्।
ततो वै विलिखेन्मन्त्री त्रिकोणत्रयमुत्तमम्।।४३।।
वृत्तं विलिख्य विधिवल्लिखेत्पद्मं सुलक्षणम्।
ततो वृत्तं विलिख्यैव लिखेद् भूपुरमेककम्।।४४।।
चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत्।

पहले त्रिकोण अंकित करके उसके बाहर और एक त्रिकोण बनाना चाहिये। तदनन्तर मन्त्रज्ञ साधक को तीन उत्तम त्रिकोण बनाना चाहिये। तदनन्तर एक वृत्त बनाकर एक सुन्दर पद्म का अंकन करना चाहिये। इसके बाद पुन: एक वृत्त का अंकन करके एक भूपुर बनाना चाहिये! तदनन्तर चतुरस्रयुक्त भूबिम्ब अंकित करके चार द्वारों का अंकन करके यन्त्र को पूर्ण करना चाहिये।।४३-४४।।

टिप्पणी—यन्त्रमाह—आदौ त्रिकोणमित्यादि। आदौ त्रिकोणमेकं ततस्तत्त्रिकोणं गर्भीकृत्य अपरं त्रिकोणमेकं, तत एतत्त्रिकोणद्वयं गर्भीकृत्य क्रमशस्त्रिकोणत्रयं विलिखेत्। एवंक्रमेण त्रिकोणपञ्चकं भवति। सर्वाणि त्रिकोणानि समबाहुकानि अधोमुखानि च कुर्यात्। वामकेश्वरतन्त्रादौ श्रीयन्त्रार्गतत्रिकोणचक्रे बाहुत्रयस्य इच्छा-क्रिया-ज्ञानेतिशक्तित्रयरूपत्वकथनात् शक्तित्रयस्य साम्यात् बाहूनामपि समपरिमाणत्वं भवितुमर्हति। अत्रापि तथैव, शक्तिसाम्यात्। रेखागणितरीत्यापि वृत्तान्तर्गतत्रिकोणबाहूनां परिमाणसाम्यं युक्तियुक्तम्। अधोमुखकरणे तु ताराहस्यधृतवचनं प्रमाणम्। तद्यथा—

यत्र यत्र महाविद्या शक्तिविद्या प्रकाशिता।
तत्र तत्र त्रिकोणञ्च अधोमुखमुदीरितम्।।
देवत्रिकोणे कर्त्तव्ये ऊर्द्ध्वास्यं परिकीर्त्तितम्।

अधोमुखत्रिकोणस्य तु शक्तिरिति संज्ञा। अस्याङ्कने वामकेश्वरतन्त्रस्य भास्कररायकृतसेतुबन्धाख्यटीकायामेवमुक्तम्—यदाशाभिमुखो मन्त्री चक्रराजं समुद्धरेत् सैव पूर्वा दिक्। तामारभ्य प्रादक्षिण्येनेतरा: सप्त दिश:। ईशानादाग्नेयपर्यन्तमेकां तिर्यग्रेखां कृत्वा तदीशानाग्रात् तदाग्नेयाच्चारभ्य पश्चिमदिक्पर्यन्ते द्वे रेखे समाकृष्य पश्चिमस्यां दिशि ते मेलयेत्। तदिदं स्वाभिमुखाग्रत्रिकोणं भवति। अस्य शक्तिरिति संज्ञा।' तन्त्रसारादिधृतकालीतन्त्रवचनेषु 'वृत्तं विलिख्य विधिवल्लिखेत् पद्मं सुलक्षणम्। ततो वृत्तं विलिख्यैव लिखेद्भूपुरमेककम्' इत्यत्र 'ततो वृत्तं समालिख्य लिखेदष्टदलं तत:। वृत्तं विलिख्य विधिवल्लिखेद्भूपुरमेककम्' इति पाठो दृश्यते, पद्मदलसङ्ख्याकथनादयमेव पाठ: समीचीनतया प्रतिभाति। तदनन्तरं त्रिकोणपञ्चकं गर्भीकृत्य एकं वृत्तं, तद्बहिरष्टदलं पद्मम्, तद्बहिरपरं वृत्तं तद्बहिश्चतुर्द्वारसमन्वितं चतुरस्राकारं भूपुरं पृथ्वीमण्डलं lलखेत्। समबाहुकोणकं क्षेत्रं चतुरस्रं, एतदेव भूपुरम्।

भूगृहं चतुरस्रं स्यादष्टवज्रविभूषितम्।

इति राघवभट्टधृतवचनात्। अत्र 'अष्टवज्रविभूषितम्' इत्युक्तावपि वज्ररहितचतुरस्रस्यापि

भूगृहसंज्ञेतिव्यवहार:। अत्रानुक्तावपि प्रथमत्रिकोणमध्यस्थले एकपङ्क्तौ निजबीजं बिन्दुं लज्जाबीजञ्च क्रमेण लिखेत्। तद्यथा कालीरहस्यधृतमहाकालसंहितायाम्—

उत्तरास्यो लिखेद्यन्त्रं गुरुं नत्वा शिवं स्मरन्।
निजबीजं ततो बिन्दुं लज्जाबीजमत: परम्।।
पङ्क्तिक्रमे लिखित्वा तु त्रिकोणपञ्चकं क्रमात्।
लिखित्वा वेष्टयेत् सम्यग्वृत्तेन परमेश्वरि।।
ततोऽष्टदलपद्मञ्च ततो वृत्तं लिखेद्बुध:।
ततो द्वाराणि कुर्वीत चतुर्दिक्षु समाहित:।।
एवं यन्त्रं प्रकुर्वीत कालिकापूजने बुध:। इति।

तन्त्रसारधृतकुमारीकल्पे च—

मध्ये तु वैन्दवं चक्रं बीजमायाविभूषितम्। इति।

निजबीजं क्रीं, लज्जाबीजं ह्रीं, बिन्दुं बिन्दुरूपं चिह्नम्। एतत्त्रितयलेखनं तन्त्रसारकारादीनामप्यभिप्रेतम्। यत्तु—

आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणं तद्बहिर्न्यसेत्।
बहिस्त्रिकोणमालिख्य षट्कोणञ्च लिखेद्बहि:।।
मध्ये तु वैन्दवं चक्रं बीजमायाविभूषितम्।
षट्कोणात्तु बहिर्वृत्तं ततश्चाष्टदलं लिखेत्।।
बहिर्वृत्तेन संयुक्तं भूपुरैकेण वेष्टितम्।
ज्ञात्वैवं मुक्तिमाप्नोति यन्त्रमेनं न संशय:।।

इति कुमारीतन्त्रवचने त्रिकोणत्रयात्परं षट्कोणलेखनमुक्तम्, तत्त्रिकोणद्वयपरम्। कालीतन्त्रवचनेन—

अधोवक्त्रं पञ्चकोणमन्योऽन्यञ्चाप्यलग्नकम्।
एवम्भूतं महायन्त्रं स्थापयेत् सिंहविष्टरे।।

इति सिद्धेश्वरतन्त्रवचनेन च सह विरोधापत्ते:, सम्भवत्येकवाक्यत्वं भिन्नवाक्यकल्पनाया अन्याय्यत्वाच्च। पञ्चकोणं पञ्चत्रिकोणम्। सिंहविष्टरे सिंहासने। तन्त्रसारे तु यन्त्रान्तरमुक्तं, तद्यथा—

शक्त्यग्निभ्याञ्च षट्कोणं शक्तिभिश्च नवात्मकम्।
पद्मं वसुदलं भूमिपुश्चतुर्द्वारसंयुता।।

ऊर्द्ध्वमुखत्रिकोणस्याग्निरिति संज्ञा। शक्त्यग्निभ्याम् अधोमुखोर्द्ध्वमुखत्रिकोणाभ्यां षट्कोणम्। अयमर्थ:—आदौ अधोमुखत्रिकोणमेकं विलिख्य पश्चादूर्ध्वमुखेनैकेन त्रिकोणेन तद्भेदयित्वा षट्कोणं सम्पाद्यम्। शक्तिभिश्च नवात्मकम्—तत: तत्षट्कोणं गर्भीकृत्य अन्योन्यासंसक्तमधोमुखत्रिकोणत्रयं लिखेदित्यर्थ:। तद्बहिरष्टदलं पद्मं, तद्बहिश्चतुर्द्वारयुक्तं भूगृहम्। कालीतन्त्रोक्तयन्त्रमेव प्रचरतितराम्। यन्त्राधारमाह स्वतन्त्रे—

लिखनं यन्त्रराजस्य हैमे पात्रे विशिष्यते।
ताम्रे वापि च कर्त्तव्यं यन्त्रं पूजार्थमेव हि।।
न पैत्तले न वा काष्ठे न पाषाणे न मार्त्तिके।
कालीयन्त्रं प्रकुर्वीत साधकोऽभीष्टसिद्धये। इति।

लिखनद्रव्यमाह कालीनिगमे—

कुषीदकर्पूरकचन्दनैश्च लिखेत्सुयन्त्रं वरताम्रपात्रे। इति।

तन्त्रान्तरे च—

चन्दनागुरुकर्पूरसिन्दूररजसापि वा।
कस्तूरीकुङ्कुमैर्देव्यै रोचनालाक्षया तथा।। इति।

लेखनीमाह श्रीतत्त्वचिन्तामणौ—

यन्त्रराजं लिखेन्मन्त्री स्वर्णरत्नशलाकया।
पुष्पेण विलिखेद्वापि विल्वस्य कण्टकेन वा।। इति।

तन्त्रान्तरे च—

तन्मध्ये विलिखेद्यन्त्रं सुवर्णेन कुशेन वा। इति।

मूलमन्त्रमुच्चार्य यन्त्रमालिखेत्। तथाहि शाक्तानन्दतरङ्गिनीधृतसम्मोहनतन्त्रे—

मूलमुच्चारयन् सम्यगालिखेद्यन्त्रमुत्तमम्। इति।।४३-४४।।

पीठपूजां ततः कृत्वा स्ववामेऽर्घ्यं न्यसेत्प्रिये।।४५।।
मूलविद्यां षडङ्गेन मूलमन्त्रेण चार्चयेत्।
ततो हृदयपद्मान्तःस्फुरन्तीं परमां कलाम्।।४६।।
यन्त्रमध्ये समावाह्य न्यासजालं प्रविन्यसेत्।
ततो ध्यात्वा महादेवीमुपचारान् प्रकल्पयेत्।।४७।।
नमस्कृत्य महादेवीं तत आवरणं यजेत्।

हे प्रिये! पीठपूजा करने के उपरान्त अपने वामभाग में अर्घ्य स्थापित करना चाहिये। तदनन्तर मूल मन्त्र द्वारा षडङ्ग मन्त्र से मूल विद्या का पूजन करना चाहिये। उसके बाद हृदय में स्फुरित परमा कला का उस यन्त्र में आवाहन करके न्याससमूह का विन्यास करने के पश्चात् ध्यान द्वारा महादेवी को उपचारों का समर्पण करना चाहिये। तत्पश्चात् महादेवी को नमस्कार करके आवरणपूजा करनी चाहिये।।४५-४७।।

टिप्पणी—पूजामाह—पीठपूजां ततः कृत्वेति। तत्क्रमः—प्रथमं स्वहृदये देवतां ध्यात्वा तत्र मानसोपचारैः सम्पूज्य ताम्राद्याधारे यन्त्रं तदशक्तौ यन्त्रपुष्पं संस्थाप्य तदन्यस्मिन् विहिताधारे वा कुमारीकल्पाद्युक्तां पीठपूजां विधाय स्ववामे त्रीण्यर्घ्यपात्राणि अशक्तौ द्वे एकं वा संस्थाप्य तत्र षडङ्गपूजां कृत्वा देवीमावाहयेत्। तत्र क्रमः—प्रथमं शिरसि द्वादशार्ण-

सरसीरुहोदरे श्रीगुरुं ध्यात्वा मानसोपचारैस्तं सम्पूज्य—

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै स्वेष्टदेवस्वरूपिणे।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम्।।

इत्यनेन प्रणम्य—

श्रीगुरो दक्षिणामूर्त्ते भक्तानुग्रहकारक।
अनुज्ञां देहि भगवन् यन्त्रराजार्चनाय मे।।

इति गुर्वाज्ञां प्रार्थ्य प्राणायामं षडङ्गन्यासञ्च कुर्यात्। तत आत्मानं कामकलारूपं विभाव्य कराभ्यां पुष्पाञ्जलिमादाय तं मातृकाम्भोजत्वेन कल्पयित्वा कूर्ममुद्रां बद्ध्वा हृदि चक्रराजे देवीं यथोक्तरूपां सपरिवारां पूर्वोक्तध्यानाभिलापेन ध्यात्वा तेजोरूपतामापाद्य अन्तर्मुद्राप्रयोगेण मूलाधारात् कुण्डलिनीमुत्थाप्य तया सह षट्चक्रभेदक्रमेण हृदयान्तः स्फुरन्तीं तेजोमयीं सुषुम्नामार्गेण ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा परतेजःसङ्गमेनावृतमहाम्बुधौ क्षणं विश्राम्य शिवशक्तिसामरस्यसुखमनुभूय—

महापद्मवनान्तःस्थे कारणानन्दविग्रहे।
सर्वहितरते मातरेह्येहि परमेश्वरि।।
एह्येहि देवदेवेशि कालिके देवपूजिते।
परामृतप्रिये शीघ्रं सान्निध्यं कुरु सिद्धिदे।।
देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते।
यावत् त्वां पूजयिष्यामि तावत् त्वं सुस्थिरा भव।।

इत्यावाहनमन्त्रान्ते 'यं' इति वायुबीजाभिलापेन वह्न्नासापुटाध्वना कूर्ममुद्रामुद्रितकरःस्थ-पुष्पाञ्जलौ तत्तेजः समानीय पीठान्तःकल्पितमूर्त्तेः शिरसि ब्रह्मरन्ध्रस्थाने सन्निवेश्य महाकालाङ्कस्थां सावरणां श्रीमद्दक्षिणकालिकां सर्वावयवभावेन ध्यायन् पीठान्तःकल्पितमूर्त्तेः शिरसि ब्रह्मरन्ध्रस्थाने सन्निवेशिता या तेजोरूपा देवी तां कल्पितमूर्त्तेः सर्वेष्वेवावयवेषु व्यापकत्वेनावाहयेत्। आवाहनानन्तरम् आवाहनाङ्गभूतानि स्थापनसन्निधापनसन्निरोधनसम्मुखीकरणान्यपि कुर्यात्। तत्रायं प्रयोगः—महाकालसहितश्रीमद्दक्षिणकालिके 'इह आगच्छ आगच्छ' इत्यावाहनीमुद्रया आवाह्य 'इह तिष्ठ तिष्ठ' इति स्थापनीमुद्रया संस्थाप्य 'इह सन्निहिता भव' इति सन्निधापनीमुद्रया सन्निधाप्य 'इह सन्निरुध्यस्व' इति सन्निरोधनीमुद्रया सन्निरुध्य 'मम पूजां गृहाण' इति सम्मुखीकरणमुद्रया आवाहितस्थापितसन्निधापितसन्निरुद्धीकृततेजस्कां कल्पितमूर्त्तिं पूजाग्रहणानुकूला-नुष्ठानवत्त्वेन सम्मुखीकुर्यात्। इत्थं विधाय प्राणप्रतिष्ठां कुर्याद्यथा—'आं ह्रीं क्रों हंसः महा-कालसहितश्रीमद्दक्षिणकालिकायाः प्राणा इह प्राणाः। आं ह्रीं क्रों हंसः महाकालसहित-श्रीमद्दक्षिणकालिकाया जीव इह स्थितः। आं ह्रीं क्रों हंसः महाकालसहितश्रीमद्दक्षिणकालिकायाः सर्वेन्द्रियाणि। आं ह्रीं क्रों हंसः महाकालसहितश्रीमद्दक्षिणकालिकायाः वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रप्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा' इति मन्त्रचतुष्टयेन प्राणप्रतिष्ठां लेलिहानमुद्रया कुशविष्टरेण वा कृत्वा 'अवगुण्ठिता भव' इत्यभिलापेन 'हूं' इत्युच्चार्य अवगुण्ठनमुद्रया प्राणप्रतिष्ठाङ्गम्

अवगुण्ठनञ्च कृत्वा देव्यङ्गे षडङ्गविन्यासेन सकलीकृत्य मूलविद्यां 'ॐ ह्रीं ह्रौं क्ष्म्रूं क्षुं' इति दीपिनीविद्यां विन्दुयुक्तां अकारादिक्षकारान्तां मातृकाञ्च उच्चार्य अर्घ्यजलेन देवीं त्रिः प्रोक्षयेत्। ततो महामुद्रानामकपरमीकरणमुद्रया परमीकृत्य छोटिकाभिर्दशदिग्बन्धनं कृत्वा 'वं' इत्यमृतबीजमुच्चार्य धेनुमुद्रया अमृतधारया अभिषिञ्चन् अमृतीकुर्यात्। ततो योनि-खड्गमुण्डवराभीतिपरयोनिमुद्राः प्रदर्श्य यथाशक्त्युपलब्धवाह्योपचारैः पूजयेत्। केचित् साम्प्र-दायिका आवाहनादिषु महाकालसहितेति पदं न वदन्ति।।४५-४७।।

कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम् ।।४८।।
विप्रचित्तान्तु सम्पूज्य बहिः षट्कोणके ततः।
उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां तथा मध्यत्रिकोणके।।४९।।
नीलां घनां बलाकाञ्च तथैवान्यत्रिकोणके।
मात्रां मुद्रां मिताञ्चैव तथैवान्तस्त्रिकोणके।।५०।।
सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषिताः।
तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यः शुचिस्मिताः।।५१।।
ततो वै मातरः पूज्या ब्राह्मी नारायणी तथा।
माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापराजिता।।५२।।
वाराही च तथा पूज्या नारसिंही तथैव च।
सर्वासामपि देवीनां बलिः पूजा तथैव च।।५३।।
अनुलेपनकं गन्धो धूपदीपौ तथैव च।
त्रिस्त्रिः पूजा प्रकर्त्तव्या सर्वासामपि साधकैः।।५४।।
गुरुपङ्क्तिं षडङ्गञ्च दिक्पालांश्च ततोऽर्चयेत्।

वाह्य षट्कोण में काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी तथा विप्रचित्ता का पूजन किया जाता है। अब मध्यत्रिकोण में उग्रा, उग्रप्रभा तथा दीप्ता का पूजन करके अपर त्रिकोण में नीला, घना, बलाका की पूजा करने के अनन्तर अन्य परत्रिकोण में मात्रा, मुद्रा तथा मिता की पूजा सम्पन्न करनी चाहिये।

पूजाकाल में उन पन्द्रह देवताओं का इस प्रकार ध्यान करे कि ये सभी श्यामवर्ण हैं, इनके दाहिने हाथ में असि तथा वाम हाथ में छड़ी है। गलदेश में मुण्डमाला है तथा मुख पर मृदु हास्यरेखा है।

तदनन्तर अष्टदल पद्म में अष्टशक्ति (अष्टमातृका) ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी, चामुण्डा, कौमारी, अपराजिता, वाराही तथा नारसिंही देवीगण की बलि, पूजा, अनुलेपन गन्ध, धूप, दीप आदि को तीन वार प्रदान करके साधक पूजन करे। तदनन्तर साधक को गुरुपंक्ति, षडङ्ग तथा दिक्पालों का पूजन करना चाहिये।।४८-५४।।

टिप्पणी—आवरणपूजामाह—कालीं कपालिनीमित्यादि। यन्त्रराजवैन्दवचक्रे मूलदेवता पूजनीया। वैन्दवचक्रस्य दक्षिणे महाकालः पूजयितव्यः। आवरणपूजायान्तु प्रथमावरणे यन्त्रराजस्थाष्टदलपद्मस्य अग्नीशाननिर्ऋतिवायुकोणस्थकेशरचतुष्टये अग्निवायुकोणयोर्मध्य-पूर्वादिगतकेशरे दिक्चतुष्टयगतकेशरचतुष्टये च क्रमेण हृदयादिषडङ्गदेवताः पूजयेत्। द्वितीया-वरणे यन्त्रराजस्य प्रथमत्रिकोणपृष्ठरेखाविन्दुचक्रयोरन्तराले गुरुपङ्क्तिः पूजयेत्। तृतीयावरणे यन्त्रराजस्य प्रथमत्रिकोणसम्मुखकोणादारभ्य वामावर्त्तेन पञ्चत्रिकोणानां पञ्चदशकोणेषु क्रमेण काल्यादयः पञ्चदश देवताः पूज्याः। चतुर्थावरणे अष्टदलपद्मस्य पूर्वाद्यष्टदलमूलेषु ब्राह्म्याद्यष्ट मातृः पूर्वाद्यष्टदलाग्रेषु असिताङ्गाद्यष्टभैरवांश्च प्रादक्षिण्येन पूजयेत्। पञ्चमावरणे भूपुरस्य पूर्वदिग्द्वारमारभ्य प्रादक्षिण्येनाष्टसु दिक्षु इन्द्रेशानयोर्मध्ये निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये च इन्द्राद्यष्ट-लोकपालान् क्रमेण पूजयेत्। ततो भूपुरवाह्ये इन्द्रादिदशलोकपालानां पृष्ठभागे यन्त्रवहिर्भूतस्थाने प्रादक्षिण्येन वज्राद्यस्त्राणि पूजयेत्। षष्ठावरणे प्रथमत्रिकोणविन्दुचक्रयोरन्तराले ईशानकोणादारभ्य प्रादक्षिण्येन कोणचतुष्टये मूलदेवताहस्तचतुष्टये वा देवीहस्तचतुष्टयगतखड्गमुण्डाभयवरात्म-कास्त्रचतुष्टयं पूजयेत्। मूलेऽनुक्तमपि ग्रन्थान्तरेभ्य आकृष्य क्रमोऽयं लिखितः।

पूजायाम् एष एव क्रमः अनुसरणीयः, श्यामारहस्यादावुक्तत्वात् शिष्टैः क्रियमाणत्वाच्च। सम्प्रदायभेदेनावरणपूजायां क्वचित् स्थानभेदः क्रमभेदश्च विद्यते।।४८-५४।।

एवं पूजां पुराकृत्वा मूलेनैव यथाविधि ।।५५।।
नैवेद्यादीन् यथाशक्त्या दद्याद्देव्यै पुनः पुनः ।
ततो वै दशवारांस्तु दीपं दद्यात्तु साधकः ।।५६।।

पहले इस प्रकार से पूजन करके मूल मन्त्र से यथाविधि तथा यथासामर्थ्य नैवेद्यादि देवी को पुनः-पुनः देना चाहिये। इसके पश्चात् दीपदान का विधान है।।५५-५६।।

पुष्पादिकं पुनर्दद्यान्मूलेनैव यथाविधि ।
ततः सावहितो मन्त्री गुरुं नत्वा शिरःस्थितम् ।।५७।।
देवीं ध्यात्वा चाष्टोत्तरसहस्रं प्रजपेन्मनुम् ।
तेजोमयं जपफलं देव्या हस्ते समर्पयेत् ।।५८।।
गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वमिति मन्त्रेण मन्त्रवित् ।
ततः शिरसि वै पुष्पं दत्त्वाष्टाङ्गं प्रणम्य च ।।५९।।
विसृज्य परया भक्त्या संहारेणैव भक्तितः ।
उद्वास्य हृदये देवीं तन्मयो भवति ध्रुवम् ।
पुरश्चरणकालेऽपि पूजा चैषा प्रकीर्त्तिता ।।६०।।

इति श्रीकालीतन्त्रे सपर्याविधिर्नाम प्रथमः पटलः

तत्पश्चात् पुनः मूल मन्त्र से यथाविधि पुष्पादि अर्पित करना चाहिये। इसके अनन्तर मन्त्रज्ञ साधक को अवधान के साथ मस्तक में अवस्थित गुरु को प्रणाम करके देवी का ध्यान करने के उपरान्त मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्रज्ञ साधक को उस कृत जपफल को 'गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं' आदि मन्त्र द्वारा तेजोमय देवी के बाँयीं ओर वाले निचले हाथ में समर्पित कर देना चाहिये। तदनन्तर देवी के मस्तक पर पुष्प प्रदान करके साष्टांग प्रणाम करना चाहिये। तत्पश्चात् अत्यन्त भक्ति के साथ संहारमुद्रा से विसर्जन करके देवी को हृदय में स्थापित करने से साधक निश्चित रूप से देवीमय हो जाता है। पुरश्चरण काल में इस प्रकार से पूजा करनी चाहिये।।५७-६०।।

कालीतन्त्र का सपर्याविधि-नामक प्रथम पटल समाप्त

द्वितीयः पटलः

(पुरश्चरणविधिः)

भैरव उवाच

साधनं सिद्धमन्त्रस्य वक्ष्यामि परमाद्भुतम्।
भाग्यहीनोऽपि मूर्खोऽपि यद्बोधादमरो भवेत् ॥१॥
साधयेत् सकलान् कामान् सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।
आदौ पुरस्क्रियां कुर्यान्नियमेन यथाविधि ॥२॥
लक्षमेकं जपेद्विद्यां हविष्याशी दिवा शुचिः।
रात्रौ ताम्बूलपूरास्यः शय्यायां लक्षमानतः ॥३॥

भैरवदेव कहते हैं—सिद्ध मन्त्र की अद्भुत साधनपद्धति को अब मैं कहता हूँ, जिसके ज्ञान से भाग्यहीन तथा मूर्ख भी अमर हो जाते हैं।

प्रथमतः नियम से यथाविधि पुरश्चरण करना चाहिये, जिसके फल से साधक सभी कामनाओं का साधन करते हुये समस्त सिद्धियों के अधिपति हो जाते हैं।

दिन में पवित्र तथा हविष्यान्न-भोजी होकर एक लाख तथा रात्रि में ताम्बूल से भरे मुख से शय्या पर बैठ कर एक लाख मन्त्र का जप करना चाहिये।।१-३।।

नानाचारो न कर्त्तव्यो न चारणमितस्ततः।
भूतहिंसा न कर्त्तव्या पशुहिंसा विशेषतः ॥४॥

पुरश्चरण काल में अनेक आचार का पालन, इधर-उधर भ्रमण, भूतहिंसा तथा विशेष करके पशुहिंसा करना उचित नहीं होता।।४।।

बलिदानं विना देव्या हिंसां सर्वत्र वर्जयेत्।
अन्यमन्त्रपुरस्कारं निन्दाञ्चैव विवर्जयेत् ॥५॥

देवी के लिये बलिदान के अतिरिक्त सर्वत्र हिंसा का त्याग करना चाहिये। अन्य मन्त्र का पुरश्चरण तथा किसी की निन्दा भी नहीं करनी चाहिये।।५।।

ततः सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगार्हो न चान्यथा।
जीवहीनो यथा देही सर्वकर्मसु न क्षमः ॥६॥

पुरश्चरणहीनोऽपि तथा मन्त्रः प्रकीर्त्तितः ।
तस्मादादौ पुरश्चर्यां कृत्वा साधकसत्तमः॥७॥
प्रयोगञ्च ततः कुर्यात् सर्वं साधकदुर्लभम्॥८॥

इति श्रीकालीतन्त्रे पुरश्चरणविधिर्नाम द्वितीयः पटलः

तदनन्तर निश्चित रूप से मन्त्रज्ञ साधक सिद्ध मन्त्र वाला होकर प्रयोग का अधिकारी हो जाता है। जिस प्रकार जीवरहित शरीर किसी भी कार्य को करने में सक्षम नहीं होता, उसी प्रकार पुरश्चरण-विहीन मन्त्र भी प्रयोग में असमर्थ रहता है। अतः श्रेष्ठ साधक को प्रथमतः मन्त्र का पुरश्चरण सम्पन्न करने के पश्चात् ही दुर्लभ प्रयोगों का अनुष्ठान करना चाहिये।।६-८।।

कालीतन्त्र का पुरश्चरणविधि-नामक द्वितीय पटल समाप्त

तृतीय पटलः

(नैमित्तिकविधिः)

भैरव उवाच

ततो होमविधिं वक्ष्ये सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
लतापुष्पान्वितं कृत्वा पर्णानां शतकं सुधीः ॥१॥
तानि सम्मन्त्र्य विधिवदसकृत् साधकोत्तमः ।
ततो वै होमयेत् तानि संस्कृतेऽग्नौ यथाविधि ॥२॥

भैरवदेव कहते हैं—तदनन्तर समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाले होम की विधि को कहता हूँ। लता-पुष्प से युक्त (वीरसाधना का गोपनीय उपचार) एक सौ बिल्वपत्र लाकर विज्ञ साधक को उसे विधिपूर्वक आमन्त्रित करने के उपरान्त संस्कृत विधि से आहुति (अग्नि में) प्रदान करनी चाहिये।।१-२।।

युगानामयुतं तेन पूजनं जायते शिवे ।
अनेन क्रमयोगेन यश्चरेद् भुवि साधकः ॥३॥
न तस्य दुर्लभं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
धीरो भवति वाग्मी च सर्वसिद्धिमुपालभेत् ॥४॥

हे शिवे! ऐसा करने से पूजन करने वाले को दश हजार वर्ष तक किये जाने वाले पूजन का फल प्राप्त होता है। जो इस क्रम पालन करता है, उस साधक के लिये तीनों लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता। वह धीर एवं वाग्मी होता है तथा उसे समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।।३-४।।

हुनेदाज्येन भक्तेन मांसेन रुधिरेण च ।
कृष्णपुष्पेण साज्येन सरक्तेन विशेषतः ॥५॥

घृत, मांस, रुधिर द्वारा अथवा विशेषतः घृत तथा रक्तमिश्रित कृष्णपुष्प से होम करना चाहिये।।५।।

आमिषादिभिरप्येवं श्मशाने जुहुयात् सुधीः ।
महाकालं हुनेद्यत्नात् पश्चाद् देवीं विशेषतः ॥६॥

विज्ञ व्यक्ति को श्मशानभूमि में आमिष आदि से भी इसी प्रकार होम करना चाहिये। वहाँ यत्नपूर्वक प्रथमतः महाकाल को आहुति प्रदान करने के पश्चात् देवी को आहुति देनी चाहिये।।६।।

त्रिधा विभज्य विद्यां वै साधकः शुद्धमानसः।
मांसं रक्तं त्वचं केशं नखं भक्तञ्च पायसम्।।७।।
आज्यञ्चैव विशेषेण जुहुयात् सर्वसिद्धये।
एवं कृते तु सर्वत्र लभते सिद्धिमुत्तमाम्।।८।।

समस्त सिद्धियों की कामना वाले साधक को शुद्ध चित्त से मन्त्र को तीन भाग में विभक्त करके मांस-रक्त-त्वक्-केश-नख-अन्न-पायस तथा घृत से विशेष रूप से आहुति प्रदान करनी चाहिये। ऐसा करने से उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है।।७-८।।

यद्यत् कामयते कामी तत्तदाप्नोति निश्चितम्।
देववन्मानवो भूत्वा भुनक्ति बहुलं सुखम्।।९।।

कामना करने वाला जो-जो कामना करता है, वह सभी इस प्रकार के अनुष्ठान से निश्चित रूप से प्राप्त कर लेता है; साथ ही मानव देवस्वरूप होकर अनेक प्रकार के सुखों का भोग करता है।।९।।

तर्पणस्य विधिं वक्ष्ये येन कार्याणि साधयेत्।
तर्पयेच्च पयोभिश्च रक्तधारायुतैस्तथा।।१०।।

अब तर्पण की विधि कहता हूँ, जिससे सभी कार्यों का साधन किया जाता है। रक्त धारायुक्त जल से तर्पण करना चाहिये।।१०।।

मज्जाभिश्च तथा तद्वत् स्वकीयेन परेण च।
आकर्षितायाः कन्यायाः कुलप्रक्षालनेन च।।११।।
मेषमाहिषरक्तेन नररक्तेन चैव हि।
म्रूषमार्जाररक्तेन तर्पयेद् देवतां पराम्।।१२।।

आकर्षिता कन्या के कुलप्रक्षालन (वीराचार की पारिभाषिक वस्तु), मेषरक्त, महिषरक्त, नररक्त, मूषिकरक्त तथा मार्जाररक्त द्वारा परा देवी का तर्पण करना चाहिये।

एवं तर्पणमात्रेण साक्षात् सिद्धीश्वरो भवेत्।
कविता जायते तस्य द्राक्षारसपरम्परा।।१३।।

उपर्युक्त प्रकार से तर्पण करने मात्र से साधक सिद्धियों का साक्षात् अधिपतिस्वरूप हो जाता हैं और द्राक्षारस परम्परा के समान अत्यन्त रसयुक्त कविता उसके मुख से प्रादुर्भूत होने लगती है।।१३।।

बृहस्पतिसमो भूत्वा देववद् भुवि मोदते।
न तस्य पापपुण्यानि जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम्।।१४।।

इति श्रीकालीतन्त्रे नैमित्तिकविधिर्नाम तृतीयः पटलः

वह साधक बृहस्पति के समान होकर देवता के समान पृथ्वी पर अवस्थान करता है। किसी भी प्रकार के पुण्य अथवा पाप उसे स्पर्श नहीं कर सकते। वह निश्चित रूप से जीवन्मुक्त हो जाता है।।१४।।

कालीतन्त्र का नैमित्तिकविधि-नामक तृतीय पटल समाप्त

चतुर्थः पटलः

(कामनाविधिः)

भैरव उवाच

अथ काम्यविधिं वक्ष्ये येन सर्वत्र सर्वगः।
साधकः साधयेत् सिद्धिं देवानामपि दुर्लभाम् ॥१॥

भैरवदेव कहते हैं—अब काम्यविधि को कहता हूँ, जिसके द्वारा साधक सर्वत्र गमन करके देवगणों के लिये भी दुर्लभ सिद्धि को प्राप्त करने वाला होता है।।१।।

कुलागारं पुष्पिताया दृष्ट्वा यो जपते नरः।
अयुतैकप्रमाणेन साधकः स्थिरमानसः ॥२॥
केवलं गुप्तभावेन स तु विद्यानिधिर्भवेत्।
संस्कृताः प्राकृताः शब्दा लौकिका वैदिकाश्च ये ॥३॥
वशमायान्ति ते सर्वे साधकस्य न चान्यथा।
अथवा मुक्तकेशश्च हविष्याशी सुसंयतः ॥४॥
प्रजपेदयुतं प्राज्ञ एतदेव फलं लभेत्।
नग्नां परलतां पश्यन्नयुतं यस्तु साधकः ॥५॥
प्रजपेत्स भवेत्सद्यो विद्याया वल्लभः स्वयम्।
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनः कुण्ठतां गताः ॥६॥

जो साधक स्थिरचित्त होकर ऋतुमती कुलनारी की योनि का दर्शन करते हुये गुप्त भाव से मन्त्र का केवल दस हजार जप करता है, वह विद्यानिधि होकर संस्कृत, प्राकृत, लौकिक तथा वैदिक—सभी शब्दों को अपने वश में कर लेता है। यह निःसंदिग्ध कथन है। अथवा जो प्राज्ञ साधक मुक्तकेश (खुले बालों वाला) एवं हविष्यान्नभोजी रहकर अत्यन्त संयत भाव से मन्त्र का अयुतसंख्यक जप करता है, उसे भी उपर्युक्त फल की ही प्राप्ति होती है। जो साधक दूसरे की नग्न स्त्री को देखते हुये (इस स्थिति में भी विचलित चित्त वाला न होकर) मन्त्र का अयुतसंख्यक जप करता है, वह भी विद्याधिपति होता है। उसे सामने देखकर उसके प्रतियोगी भी कुंठित हो जाते हैं।।२-६।।

गद्यपद्यमयी वाणी तस्य वक्त्रात् प्रवर्त्तते ।
तत्पदे सुधियः सर्वे प्रणमन्ति मुदान्विताः ।।७।।
तस्य वाक्यपरिचयाज्जडा भवन्ति वाग्मिनः ।

उस साधक के मुख से गद्य-पद्य से युक्त वाणी निर्गत होती रहती है। उसके चरणों में सभी विद्वान् मुदित होकर प्रणत होते हैं। उसकी वाणी को सुनकर वाग्मीजन भी जड़वत् हो जाते हैं।।७।।

अथवा मुक्तकेशश्च हविष्यं भक्षयेन्नरः ।।८।।
प्रजपेदयुतं तस्य एष प्रतिनिधिः स्मृतः ।
धनकामस्तु यो विद्वान् महदैश्वर्यकामुकः ।।९।।

अथवा जो व्यक्ति मुक्तकेश होकर हविष्य-भोजन पर निर्भर रहते हुये दश हजार की संख्या में मन्त्रजप करता है, उसे भी उपर्युक्त फल प्राप्त होता है। जो विद्वान् धनकामी अथवा अधिक ऐश्वर्यकामी होता है, उसकी अभिलाषा उक्तसंख्यक जप से सिद्ध हो जाती है।।८-९।।

बृहस्पतिसमो यस्तु भवितुं कामयेन्नरः ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा कुलमामन्त्र्य मन्त्रवित् ।।१०।।
मैथुनं यः प्रयात्येव स तु सर्वफलं लभेत् ।
लतारतेषु जप्तव्यं महापातकमुक्तये ।।११।।

जो मन्त्रज्ञ व्यक्ति बृहस्पति के समान होना चाहता है, वह यदि एक सौ आठ बार मूल मन्त्र से कुलस्त्री की योनि का आमन्त्रण करके मैथुनकाल में भी जप करता रहता है, उसे भी वही फल मिलता है। महापातक से मुक्त होने के लिये लता से रत (मैथुनरत) अवस्था में ही जप करना चाहिये।।१०-११।।

लता यदि न लभ्येत तदा मज्जां प्रयत्नतः ।
समुत्सार्य जपेन्मन्त्री सर्वकामार्थसिद्धये ।।१२।।

यदि लता (कुलस्त्री) न प्राप्त हो तब अपने रेतः को समुत्सारित करते हुये मन्त्रज्ञ साधक को सभी कामना तथा अर्थप्राप्ति हेतु जप करना चाहिये।।१२।।

तासां प्रहारं निन्दाञ्च कौटिल्यमप्रियन्तथा ।
सर्वथा च न कर्त्तव्यमन्यथा सिद्धिरोधकृत् ।।१३।।

महिलाओं पर प्रहार, उनकी निन्दा, उनके प्रति कुटिलता तथा अप्रिय व्यवहार का सभी प्रकार से वर्जन करना चाहिये; अन्यथा सिद्धि नहीं प्राप्त होती।।१३।।

स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रिय एव विभूषणम् ।
स्त्रीसङ्गिना सदा भाव्यमन्यथा स्वस्त्रियामपि ॥१४॥

स्त्री ही देवता, प्राण तथा अलंकार है। सर्वदा स्त्री का संग करना चाहिये। यदि पराई स्त्री न मिले, तब अपनी ही स्त्री का संग करना चाहिये।।१४।।

विपरीतरता सा तु भाविता हृदयोपरि ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा नासाध्यं विद्यते क्वचित् ॥१५॥

विपरीत रति में रत स्त्री को अपने हृदय पर अवस्थित रखते हुये जो साधक मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करता है, उसके लिये कुछ भी असाध्य नहीं रह जाता।

तद्धस्तावचितं पुष्पं तद्धस्तावचितं जलम् ।
तद्धस्तावचितं भोज्यं देवताभ्यो निवेदयेत् ॥१६॥

स्त्री के द्वारा लाये गये पुष्प, जल एवं भोज्य पदार्थों को देवताओं को निवेदित करना चाहिये।।१६।।

महाचीनद्रुमलतावेष्टितः साधकोत्तमः ।
रात्रौ यदि जपेन्मन्त्रं सैव कल्पलता भवेत् ॥१७॥

महाचीनद्रुमलता (वीराचारोक्त कुलस्त्री) से वेष्टित होकर साधकश्रेष्ठ को रात्रि में जप करना चाहिये; ऐसा करने से वह लता ही साधक के लिये कल्पलतास्वरूप अर्थात् वरदायिनी हो जाती है।।१७।।

महाचीनद्रुमलतावेष्टनेन च यत् फलम् ।
तस्यापि षोडशांशेन कलां नार्हन्ति ते शवा ॥१८॥

महाचीन द्रुमलता के वेष्टन के द्वारा जो फल मिलता है, शवगण उसकी षोडश कला की एक कला के योग्य भी नहीं हैं। (इसका अर्थ यह प्रतीत होता है कि शवसाधना से कहीं अधिक फल कुलस्त्री द्वारा आवेष्टित स्थिति में जप करने से प्राप्त होता है)।।१८।।

शवासनाधिकफलं लतागेहप्रवेशनम् ।
श्मशानालयमागत्य मुक्तकेशो दिगम्बरः ॥१९॥
जपेदयुतसङ्ख्यन्तु सर्वकामार्थसिद्धये ।
महाचीनद्रुमलतामज्जाभिर्बिल्वपत्रकम् ॥२०॥
सहस्रं देवीमभ्यर्च्य श्मशाने साधकोत्तमः ।
तदा राज्यमवाप्नोति यदि सा न पलायते ॥२१॥

शवासन की तुलना में लतागृह में प्रवेश अधिक फलप्रद होता है। श्मशान भूमि में आकर मुक्तकेश तथा दिगम्बर होकर सभी कामना तथा अर्थ की सिद्धि के लिये मन्त्र का दश हजार जप करना चाहिये। साधकश्रेष्ठ को चाहिये कि वह श्मशानभूमि मे महाचीनद्रुमलता (कुलस्त्री से आवेष्टित स्थिति में) मज्जायुक्त हाथों से बिल्वपत्र द्वारा एक हजार बार देवी भी अर्चना (हवन) करे। इससे यदि लता (कुलस्त्री) पलायित न हो जाय, तो साधक को राज्यलाभ होता है।।१९-२१।।

स्वगात्ररुधिराक्तैश्च बिल्वपत्रैः सहस्रशः।
श्मशानेऽभ्यर्च्य कालीन्तु वागीशसमतां व्रजेत्॥२२॥

एक हजार बिल्वपत्रों को अपने शरीर के रक्त से रंजित करके जो साधक श्मशान भूमि में देवी का पूजन करता है, वह बृहस्पति के समान हो जाता है।।२२।।

अनादिकां तथा दृष्ट्वा लक्षं जपति भूमिपः।
निर्मलाञ्च तथा दृष्ट्वा वश्यार्थमयुतं जपेत्॥२३॥

इति श्रीकालीतन्त्रे कामनाविधिर्नाम चतुर्थः पटलः

अनादिका को देखते हुये मन्त्र का एक लाख जप करके साधक भूमिपति हो जाता है। वशीकरण हेतु निर्मला को देखते हुये दश हजार जप करना चाहिये।।२३।।

कालीतन्त्र का कामनाविधि-नामक चतुर्थ पटल समाप्त

पञ्चमः पटलः

(सिद्धविद्याविधिः)

भैरव उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रं कल्पद्रुमं परम्।
येन जप्तेन विधिवत् सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि ॥१॥

भैरवदेव कहते हैं—अब कल्पवृक्ष के समान श्रेष्ठ मन्त्र को कहता हूँ। इसका विधिपूर्वक जप करने से आठो सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।।१।।

यस्याः स्मरणमात्रेण वाचश्चित्रायते नृणाम्।
यज्ज्ञानादमरत्वञ्च लभेन्मुक्तिं चतुर्विधाम्॥२॥

जिनके स्मरणमात्र से मानव को वाणी में विचित्रता प्राप्त होती है तथा जिसे जानने से उसे चतुर्विध मुक्ति की प्राप्ति होती है।।२।।

ये जपन्ति परां देवीं नियमेन तु संस्थिताः।
देवाः सर्वे नमस्यन्ति किं पुनर्मानवादयः॥३॥

जो नियम से रहते हुये परा देवी का जप करते हैं, उसे समस्त देवता भी प्रणाम करते हैं; फिर मानव की तो बात ही क्या है?।।३।।

बृहस्पतिसमो वाग्मी धने धनपतिर्भवेत्।
कामतुल्यश्च नारीणां रिपूणां शमनोपमः॥४॥

वह बृहस्पति के समान वाग्मी, अर्थ में कुवेर के समान धनी, नारीगण के लिये कामदेव के समान रूपवान तथा शत्रुगण के लिये यमराज-सदृश हो जाता है।।४।।

तस्य पादाम्बुजद्वन्द्वं राज्ञां किरीटभूषणम्।
तस्य भूतिं विलोक्यैव कुवेरोऽपि तिरस्कृतः॥५॥

ऐसे साधक के चरणयुगल राजा के मुकुट द्वारा अलंकृत होते हैं अर्थात् राजा उन्हें नमन करता है। उनके ऐश्वर्य के सामने कुवेर का ऐश्वर्य भी तुच्छ हो जाता है।।५।।

य एनां पूजयेद् देवीं नियमे पितृकानने।
तस्य चाज्ञाकराः सर्वे सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि॥६॥

तस्यैव जननी धन्या पिता तस्य सुरोपमः।
सम्प्रदायविदां वक्ता य एनां वेत्ति तत्त्वतः ॥७॥
अस्या विज्ञानमात्रेण कुलकोटिः समुद्धरेत्।
नन्दन्ति पितरः सर्वे गाथां गायन्ति ते मुदा ॥८॥

जो इस विधि के अनुसार श्मशान में देवी का पूजन करता है, उसकी आज्ञा का सभी पालन करते हैं तथा उसे आठो सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

जो देवी के इस प्रकृत रूप को (देवी की कृपा से) जान लेता है, उसकी जननी धन्य है, उसके पिता देवता हैं तथा वह सम्प्रदायवेत्तागण का उपदेष्टा हो जाता है।

इस विद्या के जानने मात्र से वंश के करोड़ों पूर्वपुरुषों का उद्धार हो जाता है। पितृलोक के पितर आनन्द में मग्न हो जाते है तथा वे सब साधक की प्रशंसा करने लगते हैं।।६-८।।

अपि नः स्वकुले कश्चित् कुलज्ञानी भविष्यति।
स धन्यः स च विज्ञानी स कविः स च पण्डितः ॥९॥
स कुलीनः स सुकृती स वशी स च साधकः।
स ब्राह्मणः स वेदज्ञः सोऽग्निहोत्री स दीक्षितः ॥१०॥
स तीर्थसेवी पीठानां स निवासी स सर्वदः।
स सोमपायी स व्रती स यज्वा स च साधकः ॥११॥
स संन्यासी च योगी च स मुक्तः स च ब्रह्मवित्।
स वैष्णवः स शैवश्च स सौरः स च गाणपः ॥१२॥

पितरगण कहते हैं कि हमारे वंश में होने वाला कुलज्ञानी धन्य है। वह विज्ञानी, कवि, पण्डित, कुलीन, सुकृती, वशी, साधक, ब्राह्मण, वेदज्ञ, अग्निहोत्री, दीक्षित, तीर्थसेवी, पाटसमूह का उचित अधिकारी, सर्वदाता, सोमपायी, व्रती, याज्ञिक, साधक, संन्यासी, योगी, मुक्त, ब्रह्मज्ञ, शैव, सौर, गाणपत्य है।।९-१२।।

स च विज्ञानवेत्ता च य एनां वेत्ति तत्त्वतः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वदा ॥१३॥
एनां ज्ञात्वा यजेन्मन्त्री सुखमोक्षफलप्रदाम्।

जो उन्हें यथार्थतः जान लेते हैं, वे ही विज्ञानवेता होते हैं। इसलिये समस्त प्रयत्न से सभी अवस्था में प्रत्येक क्षण उन मोक्षफलरूप सुख को प्रदान करने वाली देवी की पूजा मन्त्रज्ञ को करनी चाहिये।।१३।।

नमः पाशाङ्कुशे द्वेधा फट् स्वाहा कालि कालिके ॥१४॥

दीर्घतनुच्छदः कालीमनुः पञ्चदशाक्षरः ।
अनया सदृशी विद्या त्रैलोक्ये नापि विद्यते ॥१५॥

'नमः आं आं क्रों फट् स्वाहा कालि कालिके हूं' यह पन्द्रह अक्षरों वाला कालीमन्त्र है (जिसकी फलश्रुति इस पटल में कही गयी है।) तीनों लोकों में इस विद्या के समान दूसरी कोई विद्या नहीं है।।१४-१५।।

टिप्पणी—मन्त्रान्तरमाह—नम इति। 'नमः' इति स्वरूपम्। पाशाङ्कुशे द्वेधा—पाशः आं, अङ्कुशः क्रों इत्येतौ द्वेधा। 'फट् स्वाहा कालि कालिके' इति स्वरूपम्। दीर्घतनुच्छदः हूं। एतेन 'नमः आं आं क्रों फट् स्वाहा कालि कालिके हूं' इति पञ्चदशाक्षरः कालीमन्त्र आयातः।।१४-१५।।

विद्यारत्नं प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा कर्णावतंसवत् ।
मायायुग्मं कूर्चयुग्ममैन्द्रान्तं मादनत्रयम् ॥१६॥
मायाविन्द्वीश्वरयुतं दक्षिणे कालिके पदम् ।
संहारक्रमयोगेन बीजसप्तकमुद्धरेत् ॥१७॥
एकविंशत्यक्षराढ्यस्ताराद्यः कालिकामनुः ।
पूर्वोक्तमन्त्रवत् कुर्यात् पूजां सर्वां विचक्षणः ॥१८॥

इति श्रीकालीतन्त्रे सिद्धविद्याविधिर्नाम पञ्चमः पटलः

अब कर्णभूषणरूपा विद्यारत्न को कहता हूँ। हे कमलानने! सुनो। 'ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं' यह इक्कीस अक्षरों का कालिका का मन्त्र कहा गया है। पूर्वोक्त मन्त्र के समान ही इस मन्त्र की भी समस्त पूजा विचक्षणों को करनी चाहिये।।१६-१८।।

कालीतन्त्र का सिद्धविद्याविधि-नामक पञ्चम पटल समाप्त

टिप्पणी—मन्त्रान्तरमाह—विद्यारत्नमित्यादि। 'श्रुत्वा कर्णावतंसवत्' इत्यत्र तन्त्रसारधृतकालीतन्त्रवचने 'शृणुष्व कमलानने' इति पाठो दृश्यते। मायाद्वयं ह्रीं ह्रीं। ऐन्द्रान्तं मादनत्रयं मायाविन्द्वीश्वरयुतं इन्द्रस्य लकारस्य समीपं ऐन्द्रं रेफः तत् अन्ते यस्य तादृक्, माया ईकारः, बिन्दुः, ईश्वरो नादः, एतैर्युतं; मादनः ककारः तस्य त्रयं; तेन क्रीं क्रीं क्रीं इत्यायातम्। 'दक्षिणे कालिके' इति स्वरूपम्। तत्पश्चात् एक्तबीजसप्तकं संहारक्रमयोगेन विलोमेन उद्धरेत्। ताराद्यः तारः प्रणवः आद्यो यस्य तादृशः। एतेन 'ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं' इत्येकविंशत्यक्षराढ्यः कालिकामनुर्भवेत्। मन्त्रोऽयं विद्यासु रत्नमिव इति विद्यारत्नम्। पूर्वोक्तमन्त्रवत् द्वाविंशत्यक्षरमन्त्रवत्। अस्यापि मन्त्रस्य ध्यानपूजादिकं कुर्यात्।।१६-१८।।

षष्ठः पटलः

(वीरसाधना)

भैरव उवाच

श्रृणु देवि वरारोहे वीरसाधनमुत्तमम्।
नृणां शीघ्रफलावाप्त्यै प्रकारान्तरमुच्यते ॥१॥

भैरवदेव कहते हैं—हे वरारोहे देवि! अब उत्तम वीरसाधन का श्रवण करो। इसे मानवगण के लिये शीघ्र फलप्राप्ति हेतु प्रकारान्तर से कहा जाता है।।१।।

चतुष्पथे चतुर्दिक्षु पुरुषं हृदयं खनेत्।
जीवितं ब्रह्मरन्ध्रे वै दीपान् प्रज्वालयेत्सुधीः ॥२॥

सुधी व्यक्ति चौराहे के चारो ओर पुरुष के हृदय के बराबर गड्ढा खोदकर उन समस्त गड्ढों में जीवित प्राणी को स्थापित करके उन सबके मस्तक पर एक-एक दीप प्रज्वलित करे।।२।।

मध्ये तथा खनेदेकं तत्र मूर्द्धासनं भवेत्।
पूर्वोक्तेन च मार्गेण तत्र संस्कारमाचरेत् ॥३॥

इसी प्रकार मध्य में एक पुरुष की लम्बाई के बराबर गड्ढा खोदकर उसमें शीर्षासन करके पूर्वकथित मार्ग का अवलम्बन लेकर वहाँ का संस्कार करे।।३।।

महाकालादिदेवेभ्यो बलिं पूर्ववदाहरेत्।
कल्पोक्तपूजां सम्पूज्य जपेत् प्रयतमानसः ॥४॥

महाकालादि देवताओं को पूर्व की तरह बलि प्रदान करे; साथ ही कल्पोक्त विधान से पूजन करके संवत मन से जप करे।।४।।

दन्ताक्षमालया चैव राजदन्तेन मेरुणा।
दिग्वासाः प्रजपेन्मन्त्रमयुतं सर्वदैवतम् ॥५॥

नग्न होकर मध्य में दन्तनिर्मित दन्तमेरुयुक्त माला से सर्वदैवत मन्त्र का दश हजार जप करना चाहिये।।५।।

जपान्ते च बलिं दत्वा दक्षिणां विभवावधि।
सर्वसिद्धीश्वरो विद्वान् सर्वदेवनमस्कृतः ॥६॥

जपसमाप्ति के अनन्तर बलि प्रदान करके सामर्थ्य के अनुसार दक्षिणा देकर साधक विद्वान् समस्त सिद्धियों का अधिपति तथा समस्त देवताओं द्वारा नमस्कृत हो जाता है।।६।।

अथवा विजनेऽरण्ये स्थिरयोगासनो नरः ।
उदयास्तं दिवा जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।।७।।

अथवा विजन (निर्जन) वन में स्थिर योगासनासीन होकर सूर्योदय से सूर्यास्त-पर्यन्त जप करके साधक सभी सिद्धियों का अधिपति हो जाता है।।७।।

बिल्ववृक्षे निजक्रोड़े शवमारोप्य यत्नतः ।
नृसिंहमुद्रया वीक्ष्य जपेन्मातृकया नरः ।।८।।

बिल्ववृक्ष के नीचे अपनी गोद में यत्न से शव को रखकर नृसिंह मुद्रा में शव का अवलोकन करते हुये मातृकामन्त्र से पुटित मन्त्र का जप करे।।८।।

सहस्रं तत्र जप्त्वा वै सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
वटमूले शवं नीत्वा तत्र देवीं प्रपूज्य च ।।९।।
सुप्त्वा तत्र मनुं जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
करकाञ्चीं समादाय मुण्डमालाविभूषितः ।।१०।।
तैनैव तिलकं कृत्वा तत्तद्भस्मविभूषितः ।
श्मशाने च सकृज्जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।।११।।

साधक वहाँ पर एक हजार जप करके समस्त सिद्धियों का अधीश्वर हो जाता है। वटवृक्ष के नीचे शव को स्थापित कर देवी की पूजा करके वहीं पर शयन करे एवं मन्त्र का जप करे तो साधक समस्त सिद्धियों का अधीश्वर हो जाता है। हस्तनिर्मित कटिवन्धन, हाथों की करधनी बनाये, मुण्डमाला पहने, श्मशानभस्म का तिलक करे और उसी भस्म से भूषित होकर श्मशान में एक वार (एक बार अर्थात् एक पुरश्चरण) जप करे तो साधक सभी सिद्धियों का अधीश्वर हो जाता है।।९-११।।

कुङ्कुमागुरुकस्तूरीरोचनागुरुचन्दनम् ।
कर्पूरं पद्मरागञ्च केशरं हरिचन्दनम् ।।१२।।
एकत्र साधितं कृत्वा प्रत्येकं साधयेत्ततः ।
एतत्तिलकमात्रेण राजानं वशमानयेत् ।।१३।।

कुंकुम-अगुरु-कस्तूरी-गोरेचन-अगुरु चन्दन-कर्पूर-पद्मराग-हरिचन्दन का शोधन करने के बाद सबको मिलाकर तिलक लगाने से राजा वशीभूत होता है।।१२-१३।।

जिह्वाग्रे रुधिरं कृत्वा आकाशे च समाहरेत्।
तेनैव गुटिकां कृत्वा भद्रकालीं ततो जपेत्॥१४॥
नीलं नीलपताकाञ्च ललज्जिह्वां करालिकाम्।
ललाटे तिलकं कृत्वा साधको वीतभीः स्वयम्॥१५॥

'क्लीं रं हं' मन्त्र से गुटिका बनाकर भद्रकाली के मन्त्र का जप करना चाहिये। 'त झ क्ष अं' मन्त्र से ललाट पर तिलक लगाकर साधक समस्त भय से रहित हो जाता है।।१४-१५।।

महाष्टमी-नवम्यांस्तु संयोगे पुरतः स्थितः।
छागमहिषमेषाणां चतुर्दिक्षु शरान् क्षिपेत्॥१६॥

महाष्टमी तथा महानवमी के सन्धिकाल में पहले से अवस्थित छाग, महिष तथा मेष के चारो ओर तीर छोड़ना चाहिये।।१६।।

कबन्धान् मुण्डपुञ्जञ्च दीपादिभिरलङ्कृतम्।
मध्ये कबन्धमास्तीर्य तत्र गन्धर्वरूपधृक्॥१७॥
ताम्बूलपूररक्तास्यमज्जनाञ्चितलोचनम्।
कृत्वा कालीमनुं जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्॥१८॥

अव उनके कवन्धसमूह तथा मुण्डराशि को दीपप्रभृति से अलंकृत करके मध्य में कबन्ध का आस्तरण बनाकर गन्धर्वरूप धारण करके ताम्बूल चबाकर मुख को रक्तवर्ण करके एवं कज्जल द्वारा चक्षु को शोभित करके काली के मन्त्र का जप करने से साधक समस्त सिद्धियों का अधिपति हो जाता है।।१७-१८।।

वियद्द्रवियुतं देवि नेत्रान्तं चन्द्रभूषितम्।
बीजं प्रत्येकद्रव्याणां मिलितानाञ्च पार्वति॥१९॥
मूलमन्त्रेण मन्त्रं यो जपेत् साष्टशतत्रयम्।
जिह्वाग्रे रुधिरं गृह्य चामुण्डे घोरनिस्वने॥२०॥
बलिं गृह्ण वरं देहि रुधिरं गगनेऽमले।
कालि कालि प्रचण्डोग्रे ततोऽस्त्रं कवचं ततः॥२१॥
कालिकेयं समाख्याता वीराणां हितकाम्यया।
कूर्च्चयुग्मं महादेवी नीलायाः कथितं तव॥२२॥

हे पार्वति! जो 'ह्रीं अं ओं औं' मन्त्र से प्रत्येक द्रव्य एवं मिलित द्रव्य का शोधन करके मूल मन्त्र के साथ उक्त मन्त्र का जप करते हैं, वे सभी साधक समस्त सिद्धियों के अधिपति हो जाते हैं।

'क्रीं रुधिरं गृह्ण चामुण्डे घोरनि:स्वने बलिं गृह्ण वरं देहि र व ह कालि कालि प्रचण्डोग्रे फट् हुं' यह कालिकारूपा विद्या वीर साधकों के लिये कही गयी है। हे महादेवि! नीला का 'हुं हुं' मन्त्र तुमसे पहले ही कहा था।।१९-२२।।

वियद्भृगुयुतं देवि कलमिश्रं रवी रतिः ।
चन्द्रखण्डसमायुक्तं ततो नीलपदं ततः ।।२३।।
पताके हूंफडन्ते स्यात् पूर्वकूटमनुर्मतः ।
सुगुप्तेयं महाविद्या तव स्नेहादिहोदिता ।।२४।।

'ह्रीं सकलहक्रीं ॐ झ नीलपताके हुं फट्' यह है—पूर्व कूटमन्त्र। यह महाविद्या अतीव गोपनीय है। तुम्हारे स्नेह के कारण इसे यहाँ कहा गया है।।२३-२४।।

जयश्रीकरणी देवी पताकेव रणस्थले ।
तेन नीलपताकेयं विद्या वै वीरसाधने ।।२५।।

यह पताकास्वरूपा देवी रणस्थल में जयप्रदा है। अत: वीरसाधन में इस विद्या को नीलपताका कहा जाता है।।२५।।

उग्रचण्डा महाविद्या या पुरा कथिता प्रिये ।
ललज्जिह्वा तु सा प्रोक्ता योज्या वै वीरसाधने ।।२६।।

हे प्रिये! पूर्व में जिन उग्रचण्डा महाविद्या को कहा था, वे ही ललज्जिह्वारूपेण अभिहिता तथा वीरसाधनार्थ आश्रय लेने योग्य हैं।।२६।।

यासौ विद्या महातारा सा करालेति कीर्त्तिता ।
भूमिपुत्रसमायुक्ता यामावस्या शुभोदया ।।२७।।
भाद्रे पुमृक्षयोगेन तस्यां वीरवरोत्तमः ।
विष्णुक्रान्तां समानीय निक्षिपेन्मृतभूमिषु ।।२८।।
तत्र तां साधितां कृत्वा तद्दिने मत्स्यहट्टके ।
तत्र तं साधितं मत्स्यमेकमूल्येन दापयेत् ।।२९।।
तज्जलेनाभिषेकञ्च पूर्ववच्च शिरोपरि ।
साधितां विजयां तस्य उदरे मुखवर्त्मना ।।३०।।
क्षिप्त्वा तत्र खनेन्मत्स्यमज्जनाञ्चितलोचनः ।
पूर्वद्रव्येण तिलकमुत्थाय च मनुं जपेत् ।।३१।।

जो विद्या महातारारूप से प्रसिद्ध हैं, वे ही 'कराला' नाम से भी प्रसिद्ध हैं। यदि भाद्रमास में मंगलप्रसवा अमावस्या मंगलवारयुता होकर पुम् नक्षत्रयुता हो तब वीर

साधक इस दिन विष्णुक्रान्ता (अपराजिता) को लाकर श्मशान में फेंक दे और वहाँ उसे (मन्त्र से) शोधित करे। उस दिन मछली के बाजार में जाकर उसे शुद्ध करके एक मत्स्य खरीदे। पहले की तरह जल से मस्तक के ऊपर अभिषेक करे। शोधित विजया (भांग) को मुख में रखकर उसके उदर पर क्षेपण करे और कज्जल से नेत्रों को शोभित करके वहीं पर उस मछली को गाड़ दे। तदनन्तर पूर्वोक्त द्रव्य का तिलक लगाकर मन्त्र का जप करे।।२७-३१।।

स्वयं वै तत्र भगवान् भैरवो लगुडान्वितः ।
गतभीतिस्ततो वीरस्तं विलोक्य जपेन्मनुम् ।।३२।।

वहाँ स्वयं भगवान् भैरव डण्डा लिये उपस्थित होते हैं। उनको देख करके भयरहित होकर मन्त्र का जप करते रहना चाहिये।।३२।।

यदि भाग्यवशाद् देवि लगुड़स्तत्र लभ्यते ।
तदा स्वयं भैरवोऽसौ स्वयं वीरेश्वरो भवेत् ।।३३।।

हे देवि! यदि भाग्य से वहाँ वह लगुड़ प्राप्त हो जाय (भैरव से लाठी प्राप्त हो जाय) तब साधक स्वयं ही भैरव एवं वीराधिपति हो जाता है।।३३।।

मत्स्यमानीय देवेशि निक्षिपेत् पितृकानने ।
तत्रासकृज्जपित्वा तु देवतामेलनं भवेत् ।।३४।।

हे देवेशि! मत्स्य को लाकर श्मशान में निक्षेप करे। वहाँ जप करने से साधक को देवता का साक्षात्कार होता है।।३४।।

तत्र नत्वा महादेवं महादेवीञ्च भाविनि ।
तद्भस्मतिलकं कृत्वा स्वयं वीरेश्वरो भवेत् ।।३५।।

हे भाविनि! वहाँ महादेव एवं महादेवी को प्रणाम करके श्मशानभस्म का तिलक लगाकर साधक स्वयं वीराधिपति हो जाता है।।३५।।

निशायां मृतहट्टे च उन्मत्तानन्दभैरवः ।
दिग्वासा विमली भस्मभूषणो मुक्तकेशकः ।।३६।।
कपाली खड्गहस्तश्च जपेन्मातृकया यदि ।
तदा तस्य महादेवि सर्वसिद्धिः करे स्थिता ।।३७।।

यदि रात्रि में श्मशान में उन्मत्तानन्दभैरवरूप हो दिगम्बर, निर्मल, भस्मभूषित, मुक्तकेश, कपालवान् एवं खड्गहस्त होकर मातृकावर्ण से साधक जप करता है, तब हे महादेवि! उसके हाथो में समस्त सिद्धियाँ अवस्थित हो जाती हैं।।३६-३७।।

डाकिनीं योगिनीं वापि अन्यां वा भूतलाङ्गनाम् ।
तत्राप्यानीय सम्पूज्य सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥३८॥

वहाँ डाकिनी, योगिनी अथवा अन्य स्थूलदेही नारी को लाकर पूजा करने से साधक सभी सिद्धियों का अधिपति हो जाता है।।३८।।

सर्वेषां जीवहीनानां जन्तूनां वीरसाधने ।
ब्राह्मणं गोमयं त्यक्त्वा साधयेद् वीरसाधनम् ॥३९॥

वीराचार-साधना में प्राणहीन जन्तुगण की देह को वेदोक्त गोमय के स्थान पर वीरविहित द्रव्यों से शोधित करना चाहिये तथा वीरसाधना का अनुष्ठान करना चाहिये।।३९।।

मृतासनं विना देवि पूजयेत् पार्वतीं शिवाम् ।
तावत्कालं वसेद् घोरे यावदाहूतसम्प्लवम् ॥४०॥

हे देवि! जो शवासन के अतिरिक्त मंगलमयी देवी की पूजा (अन्य आसनों पर) करते हैं, वे प्रलय-पर्यन्त नरक में निवास करते हैं।।४०।।

महाशवाः प्रशस्ताः स्युः प्रधानवीरसाधने ।
क्षुद्राः प्रयोगकर्त्तॄणां प्रशस्ताः सर्वसिद्धिदाः ॥४१॥

मुख्य वीरसाधनार्थ महाशव प्रशस्त है। सामान्य प्रयोगकर्त्ताओं के लिये क्षुद्र शव भी प्रशस्त है और सभी सिद्धियों को देने वाला होता है।।४१।।

एवं वीरक्रमं देवि कथितञ्च तवानघे ।
न कस्यचित् प्रवक्तव्यं मम प्रीत्या महेश्वरि ॥४२॥

इति श्रीकालीतन्त्रे वीरसाधने षष्ठः पटलः

हे निष्पाप महेश्वरि! इस प्रकार से तुमसे वीरक्रम को मैंने कहा। मेरी प्रीति के लिये इसे अन्य किसी से नहीं कहना चाहिये।।४२।।

कालीतन्त्र का वीरसाधनविधि-नामक षष्ठ पटल समाप्त

सप्तमः पटलः

(रहस्यपुरश्चरणविधिः)

देव्युवाच

ज्ञातमेतन्मया देव त्वत्प्रसादान्महेश्वर।
अशक्तानान्तु मे देव पुरश्चरणमुच्यताम्।
सिद्ध्यन्ते च यथा मन्त्रा लभन्ते सिद्धिमुत्तमाम्॥१॥

देवी कहती हैं—हे महेश्वर! हे देव! आपके अनुग्रह से मैंने सब कुछ जान लिया; अब अशक्त अर्थात् असमर्थ साधकों द्वारा किये जाने वाले पुरश्चरण कहने मुझसे कहें, जिससे कि उन्हें भी मन्त्रों की सिद्धि हो एवं वे भी उत्तम सिद्धि को प्राप्त कर सकें।।१।।

भैरव उवाच

एवं नीलक्रमं देवि कथितञ्च वरानने।
श्मशाने च पुरश्चर्या कथिता भुवि दुर्लभा।
अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते॥२॥

भैरवदेव कहते हैं—हे देवि वरानने! इस प्रकार से नीलक्रम को मैंने कहा था। अब पृथ्वी में दुर्लभ तथा श्मशान में अनुष्ठेय दुर्लभ पुरश्चरण के तत्त्व को कहता हूँ। अथवा अन्य प्रकार से भी पुरश्चरण किया जा सकता है।।२।।

कुजे वा शनिवारे वा नरमुण्डं समाहृतम्।
पञ्चगव्येन मिलितं चन्दनाद्यैर्विशेषतः॥३॥
निक्षिप्य भूमौ हस्तार्द्धमानतः कानने वने।
तत्र तद्दिवसे रात्रौ सहस्रं यदि मानवः॥४॥
एकाकी प्रजपेन्मन्त्रं स भवेत् कल्पपादपः।

मंगल अथवा शनिवार को नरमुण्ड का संग्रह करके पञ्चगव्य तथा चन्दनादि द्वारा शोधित करने के बाद उसे कानन अथवा वनभूमि में आधा हाथ चौकोर भूमि पर रखकर वहीं दिन में एकाकी रहकर जो भी मनुष्य मन्त्र का एक हजार जप करता है, तो उस जप के प्रभाव से वह कल्पवृक्ष के समान हो जाता है।।३-४।।

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ॥५॥
शवमानीय तद्वारे तेनैव परिखन्यते ।
तद्दिनात्तद्दिनं यावत्तावदष्टोत्तरं शतम् ॥६॥
स भवेत्सर्वसिद्धीशो नात्र कार्या विचारणा ।

अथवा अन्य प्रकार के पुरश्चरण को कहता हूँ। उसी वार (मंगल-शनिवार) को शव को लाकर पूर्ववत् खनन करके उस वार से लेकर अगले उसी वार-पर्यन्त जो साधक प्रतिदिन एक सौ आठ बार मन्त्रजप करता है, वह समस्त सिद्धियों का अधीश्वर हो जाता है। इस सम्बन्ध में कोई भी अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये।।५-६।।

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ॥७॥
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ।
सूर्योदयात्समारभ्य यावत्सूर्योदयान्तरम् ॥८॥
तावज्जप्त्वा निरातङ्कः सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।

अथवा अब अन्य प्रकार से किये जाने वाले पुरश्चरण को कहता हूँ। उभय पक्ष (कृष्ण एवं शुक्ल पक्ष) की अष्टमी अथवा चतुर्दशी को सूर्योदय से प्रारम्भ करके अगले दिन के सूर्योदय-पर्यन्त निर्भय होकर जप करने से साधक समस्त सिद्धियों का अधिपति हो जाता है।।७-८।।

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ॥९॥
चन्द्रसूर्यग्रहे चैव ग्रासावधि विमुक्तितः ।
यावत्सङ्ख्यं मनुं जप्यात्तावद्धोमादिकञ्चरेत् ॥१०॥
सूर्यग्रहणकालाद्धि नान्यः कालः प्रशस्यते ।
तत्र यद्यत् कृतं कर्म तदनन्तफलं लभेत् ॥११॥

अथवा अन्य प्रकार से पुरश्चरण-सम्पन्न करने की विधि को कहता हूँ। चन्द्र अथवा सूर्यग्रहण के समय ग्रास से लेकर मोक्ष-पर्यन्त जितनी संख्या में हो सके, उतना मन्त्र-जप करने के पश्चात् कृत जप का दशांश होम करना चाहिये। सूर्यग्रहण की तुलना में अन्य काल प्रशस्त नहीं है। इस समय जो भी कर्म किया जाता है, उसका अनन्त फल प्राप्त होता है।।९-११।।

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ।
शरत्काले चतुर्थ्यादि नवम्यन्तं विशेषतः ॥१२॥
भक्तितः पूजयित्वा तु रात्रौ तावत्सहस्रकम् ।
जपेदेकाकी विजने केवलं तिमिरालये ॥१३॥

अष्टम्यादिनवम्यन्तमुपवासपरो भवेत्।
अन्यत्र गुरुमार्गस्य लङ्घनं नैव कारयेत्॥१४॥

अथवा अन्य प्रकार का पुरश्चरण कहता हूँ। शरत्काल में विशेष रूप से चतुर्थी से लेकर नवमी-पर्यन्त निर्जन वन के अन्धकारमय प्रकोष्ठ में एकाकी होकर जप करना चाहिये। अष्टमी से लेकर नवमी-पर्यन्त उपवास करना चाहिये। इसके अतिरिक्त अन्यत्र गुरुमार्ग का लंघन भी नहीं करना चाहिये।।१२-१४।।

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते।
अष्टमीसन्धिवेलायामष्टोत्तरलतागृहम् ॥१५॥
प्रविश्य मन्त्री विधिवत्ताः समभ्यर्च्य यत्नतः।
पूर्वोक्तकल्पमासाद्य पूजादिकं समाचरेत्॥१६॥

अथवा अन्य प्रकार का पुरश्चरण कहता हूँ। अष्टमी की सन्धिवेला में मन्त्रज्ञ साधक एक सौ आठ कामिनीगृहों में प्रवेश करके यत्नपूर्वक विधि के अनुसार उनकी पूजा करे। पूर्वोक्त विधि के अनुसार पूजादि का अनुष्ठान करे।।१५-१६।।

केवलं कामदेवोऽसौ जपेदष्टोत्तरं शतम्।
तासान्तु पत्रमूलेषु उल्कां संगृह्य मस्तके॥१७॥
मन्त्रसिद्धिर्भवेत् सद्यो लतादर्शनपूजनात्।

तदनन्तर साधक कामदेवस्वरूप होकर एक सौ आठ बार मन्त्रजप करे तथा उन कामिनियों के मस्तक से उल्का (?) ग्रहण करे। कामिनियों के दर्शन-पूजन से तत्क्षण ही मन्त्र सिद्ध हो जाता है।।१७।।

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते॥१८॥
आकृष्टायाः कुलागारे लिखित्वा मन्त्रमेव च।
सम्पूज्य तत्र संस्कारं कृत्वा तस्यै निवेद्य च॥१९॥
किञ्चिज्जप्त्वा मनुं नीत्वा देवताभावतत्परः।
तां विसृज्य नमस्कृत्य स्वयं जप्त्वा सुसंयतः॥२०॥
प्रातः स्त्रीभ्यो बलिं दत्त्वा मन्त्रसिद्धिर्न संशयः।

अथवा अन्य प्रकार के पुरश्चरण को कहता हूँ। आकृष्टा शक्ति के कुलागार में (योनिदेश में) मन्त्र लिखे, पूजा करे, वहाँ संस्कार करे, निवदेन करे, किञ्चित् जप करे, मन्त्रग्रहण करे, देवभाव में तत्पर रहे, अन्त में विसर्जन करे। नमस्कार करे, संयत भाव से जप करे। प्रात:काल स्त्रीगण को उपहार प्रदान करे। इससे मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है, इसमें कोई संशय नहीं है।।१८-२०।।

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ॥२१॥
गुरुमानीय संस्थाप्य देववत् पूजनं विभोः ।
वस्त्रालङ्कारहेमाद्यैः सन्तोष्य गुरुमेव च ॥२२॥
तत्सुतं तत्सुताञ्चैव तत्पत्नीञ्च विशेषतः ।
पूजयित्वा मनुं जप्त्वा स्वयं सिद्धीश्वरो भवेत् ॥२३॥

अथवा अन्य प्रकार से पुरश्चरण को कहता हूँ। गुरु को लाकर उन्हें बैठाकर देवता के समान गुरु का पूजन करके वस्त्र, अलंकार तथा स्वर्णादि से गुरु को सन्तुष्ट करके उनके पुत्र, कन्या तथा विशेष रूप से उनकी पत्नी का भी पूजन करने के बाद मन्त्र का जप करने से साधक स्वयं सिद्धियों का अधिपति हो जाता है।।२१-२३।।

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ।
सहस्रारे गुरोः पादपद्मं ध्यात्वा प्रपूज्य च ॥२४॥
केवलं देवभावेन जप्त्वा सिद्धीश्वरो भवेत् ।
गुरवे दक्षिणां दद्याद् यथाविभवमात्मनः ॥२५॥

अथवा अन्य प्रकार से भी पुरश्चरण किया जा सकता है। अपने सहस्रार चक्र में गुरु के चरणकमल का ध्यान तथा पूजन करके उनके प्रति देवभाव में जप करने से साधक सिद्धीश्वर हो जाता है। सिद्धि प्राप्त करने के उपरान्त साधक को अपने सामर्थ्य के अनुसार गुरु को दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये।।२४-२५।।

गुरोरनुज्ञामात्रेण दुष्टमन्त्रोऽपि सिध्यति ।
गुरुं विलङ्घ्य शास्त्रेऽस्मिन् नाधिकारः सुरैरपि ॥२६॥

गुरु की अनुज्ञामात्र से दुष्ट मन्त्र भी सिद्ध हो जाते हैं। जो गुरु का लंघन करता है, उसे इस शास्त्र में देवता भी अधिकार नहीं दिला सकते।।२६।।

एषाञ्च मन्त्रतन्त्राणां प्रयोगः क्रियते यदि ।
गुरुवक्त्रं विना देवि सिद्धिहानिः प्रजायते ॥२७॥

हे देवि! गुरु के उपदेश के अभाव में यदि कोई इस मार्ग के मन्त्र-तन्त्रों का प्रयोग करता है, तो उसे सिद्धिहानि होती है।।२७।।

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते ।
स्वकीयां परकीयां वा स्त्रियमानीय साधकः ॥२८॥
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा योनिमामन्त्र्य तत्त्ववित् ।
गच्छन् परमतत्त्वज्ञः सहस्रं जपते यदि ॥२९॥

तदा मन्त्रो भवेत् सिद्धो दुष्टमन्त्रोऽपि पार्वति।
एतत् प्रयोगं देवशि न कस्मै दर्शयेत् क्वचित् ॥३०॥

अथवा अन्य प्रकार से पुरश्चरण कहता हूँ। तत्त्ववेत्ता साधक स्वकीया अथवा परकीया स्त्री को लाकर मन्त्र का एक सौ आठ जप करके योनि का आमन्त्रण करे। यदि परमतत्त्वज्ञ साधक उसमें गमन (रति) करते हुये मन्त्र का एक हजार जप करता है, तो हे पार्वति! वह मन्त्र दुष्ट होने पर भी सिद्ध हो जाता है। हे देवेशि! यह प्रयोग कभी भी किसी को दिखलाना नहीं चाहिये।।२८-३०।।

एतन्मन्त्रञ्च तन्त्रञ्च शिष्येभ्योऽपि न दर्शयेत्।
यदि वा दर्शयेन्मोहात् कुबुद्धिः कुलनाशकः।
अन्यथा प्रेतराजस्य भवनं याति निश्चितम् ॥३१॥

इति श्रीकालीतन्त्रे रहस्यपुरश्चरणविधिर्नाम सप्तमः पटलः

यह मन्त्र तथा मन्त्रप्रयोग शिष्यो को भी नहीं दिखाना चाहिये। यदि मोहवश कोई कुबुद्धि व्यक्ति इसे देख लेता है, तो वह कुलनाशक होता है। इसके विपरीत आचरण करने से साधक को निश्चित रूप से यमालय जाना पड़ता है।।३१।।

कालीतन्त्र का रहस्यपुरश्चरणविधि-नामक सप्तम पटल समाप्त

अष्टमः पटलः

(आचारविधिः)

भैरव उवाच

अथाचारं प्रवक्ष्यामि यत्कृतेऽमृतमश्नुते ।
सर्वभूताहिते युक्तः समयाचारपालकः ॥१॥
अनित्यकर्मसन्त्यागी नित्यानुष्ठानतत्परः ।
मन्त्राराधनमात्रेण शिवभावेन तत्परः ॥२॥
परस्यां देवतायाञ्च सर्वकर्मनिवेदकः ।
अन्यमन्त्रार्चनश्रद्धामन्यमन्त्रप्रपूजनम् ॥३॥
कुलस्त्रीवीरनिन्दाञ्च तद्द्रव्यस्यापहारणम् ।
स्त्रीषु रोषं प्रहारञ्च वर्जयेन्मतिमान् सदा ॥४॥

अब आचार को कहता हूँ; जिसके करने से अमृतत्व की प्राप्ति होती है। समस्त प्राणियों के कल्याण में रत, समयाचार-पालन में रत, अनित्य कर्म का त्याग करके नित्य कर्मानुष्ठान में रत, मन्त्राराधन द्वारा शिवभाव में तत्परता, परदेवता को समस्त कर्म का निवेदन, अन्य मन्त्रों में अश्रद्धा न रखना—इन सबका साधक को वरण करना चाहिये। बुद्धिमान को अन्य मन्त्रों की पूजा, कुलस्त्री तथा वीरों की निन्दा, उनके द्रव्यों का अपहरण, स्त्रियों पर क्रोध तथा प्रहार का सदा त्याग करना चाहिये।।१-४।।

स्त्रीमयञ्च जगत्सर्वं स्वयं तावत्तथा भवेत् ।
पेयं चर्व्यं तथा चोष्यं भक्ष्यं भोज्यं गृहं स्वयम् ॥५॥
सर्वञ्च युवतीरूपं भावयेन्मतिमान् सदा ।
कुलजां युवतीं वीक्ष्य नमस्कुर्यात् समाहितः ॥६॥

समस्त जगत् को स्त्रीमय जानना चाहिये एवं स्वयं भी स्त्रीमय रहना चाहिये। मतिमान साधक को पानीय, चर्वणयोग्य, भक्षणीय, खाद्यमात्र, गृह, स्वयं एवं सब कुछ में सर्वदा युवतीमय भावना करनी चाहिये। कुलजा युवती को देखकर समाहित चित्त से प्रणाम करना चाहिये।।५-६।।

यदि भाग्यवशेनैव कुलदृष्टिस्तु जायते ।
तदैव मानसीं पूजां तत्र तासां प्रकल्पयेत् ॥७॥

यदि भाग्य से कुलनारी का दर्शन प्राप्त हो जाय, तो उसी समय उसका मानसिक पूजन करना चाहिये।।७।।

बालां वा यौवनोन्मत्तां वृद्धां वा युवतीमपि।
कुत्सितां वा महादुष्टां नमस्कृत्य विभावयेत्।।८।।
तासां प्रहारं निन्दाञ्च कौटिल्यमपि वर्जयेत्।
सर्वथा नैव कर्त्तव्यमन्यथा सिद्धिरोधकृत्।।९।।

बालिका, यौवनोन्मत्ता, वृद्धा अथवा युवती यदि कुत्सिता अथवा महादुष्टा भी हो, तब भी उसे नमस्कार द्वारा सम्मान प्रदान करना चाहिये। उन पर प्रहार नहीं करना चाहिये, उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये, उनके साथ कुटिलता नहीं करनी चाहिये। ऐसा करने से सिद्धि नष्ट हो जाती है।।८-९।।

स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रिय एव विभूषणम्।
स्त्रीसङ्गिना सदा भाव्यमन्यथा स्वस्त्रिया अपि।।१०।।

स्त्रीगण ही देवता, प्राण तथा अलंकार हैं। सर्वदा स्त्री के साथ रहना चाहिये। अन्य स्त्री के न मिलने पर अपनी स्त्री को ही साथ रखना चाहिये।।१०।।

विपरीतरता सा तु भविता हृदयोपरि।
तद्धस्तावचितं पुष्पं तद्धस्तावचितं जलम्।।११।।
तद्धस्तावचितं भोज्यं देवताभ्यो निवेदयेत्।
सर्वं तदक्षयं प्रोक्तं देवतापूजनात् प्रिये।।१२।।

स्त्रियाँ विपरीतरता होकर हृदय के ऊपर अवस्थान करती है। उनके हाँथों से लाये हुये पुष्प, जल एवं भोज्य को देवता को अर्पित करना चाहिये। हे प्रिये! उससे देवता पूजन करने से वह सब अक्षय हो जाता है।।११-१२।।

विपरीतरतासक्तोऽप्यष्टोत्तरसहस्रकम्।
अष्टोत्तरशतं वापि तदा सिद्धिः प्रजायते।।१३।।

यदि विपरीत रति करते समय एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ बार मन्त्रजप किया जाता है तो उसी समय उसकी सिद्धि प्राप्त हो जाती है।।१३।।

स्त्रीद्वेषो नैव कर्त्तव्यो विशेषात् पूजनं स्त्रियाः।
जपस्थाने महाशङ्खं निवेश्यार्द्धं जपञ्चरेत्।।१४।।

स्त्रीद्वेष नहीं करना चाहिये; अपितु उनकी पूजा करनी चाहिये। जपस्थान में महाशंख (कपाल) स्थापित करके अर्द्ध जप (?) करना चाहिये।।१४।।

स्त्रियं पश्यन् स्पृशन् गच्छन् विशेषात् कुलजां शुभाम् ।
भक्षन् ताम्बूलमत्स्यांश्च भक्ष्यद्रव्यं यथारुचि ॥१५॥
मत्स्यं मांसं तथा क्षौद्रं नानाद्रव्यसमन्वितम् ।
भक्ताद्यशेषभक्ष्याणि दत्त्वा द्रव्यं जपेन्मनुम् ॥१६॥

स्त्री को, विशेषतया कुलजा मंगलमयी युवती को देखते-देखते स्पर्श करते-करते, गमनरत (मैथुनरत) रहते हुये यथारुचि उसे ताम्बूल, मछली, भक्ष्य द्रव्य, मधु, मांस-प्रभृति विभिन्न द्रव्य, अन्नादि निखिल भक्ष्य द्रव्य प्रदान करके मन्त्र का जप करना चाहिये।।१५-१६।।

दिक्कालनियमो नात्र स्थित्यादिनियमो न च ।
सर्वथा पूजयेद् देवीमस्नातः कृतभोजनः ॥१७॥

यहाँ दिक्-काल-स्थिति का कोई नियम नहीं है। स्नान किये विना एवं भोजन करने के उपरान्त भी सव प्रकार से देवी का पूजन किया जा सकता है (इस प्रकार यहा दिखला रहे हैं कि इस मार्ग में यह सब लौकिक नियम प्रभावी नहीं हैं)।।१७।।

महानिश्यशुचौ देशे बलिं मन्त्रेण दापयेत् ।
न जपे कालनियमो नार्चादिषु बलिष्वपि ॥१८॥

महानिशा में अपवित्र स्थान पर मन्त्र द्वारा बलि प्रदान करनी चाहिये। यहाँ जप, पूजा तथा बलि में काल का कोई नियम नहीं है।।१८।।

स्वेच्छानियम उक्तोऽत्र महामन्त्रस्य साधने ।
वस्त्रासनदेहागारस्थानस्पर्शादिवारिणः ॥१९॥
शुद्धि न चाचरेत्तत्र निर्विकल्पं मनश्चरेत् ।
सर्व एव शुभः कालो नाशुद्धिर्विद्यते क्वचित् ॥२०॥

महामन्त्र के साधन में स्वेच्छा नियम ही कहा गया है। वस्त्र, आसन, देह, गृह, स्थान की स्पर्शादि शुद्धि तथा जलशुद्धि का आचरण नहीं करना चाहिये। मन को भी विकल्परहित नहीं करना चाहिये। इस साधना के लिये सभी काल शुभ होते हैं। कहीं भी कोई अशुद्धि नहीं होती।।१९-२०।।

न विशेषो दिवारात्रौ न सन्ध्यायां महानिशि ।
नात्र शुद्धेरपेक्षास्ति न चामेध्यादिदूषणम् ॥२१॥

दिन-रात्रि-सन्ध्या तथा महानिशा में से कोई भी इस साधना के लिये विशिष्ट नहीं है। शुद्धि की भी अपेक्षा इसमें नही है। यहाँ अयज्ञीयत्वप्रभृति कोई दोष भी नहीं है।

सुगन्धिश्वेतलौहित्यकुसुमैरर्चयेद् दलैः ।
बिल्वैर्मरुवकाद्यैश्च तुलसीवर्जितैः शुभैः ॥२२॥

सुगन्धि, शुभ्र तथा रक्तपुष्प से एवं तुलसी के अतिरिक्त बिल्व, मरु तथा बक-प्रभृति सुन्दर दलों (पत्रों) से पूजन करना चाहिये।।२२।।

नाधर्मो विद्यते सुभ्रु किञ्च धर्मो महान् भवेत् ।
स्वेच्छाचारोऽत्र गदितः प्रचरेद्धृष्टमानसः ॥२३॥

हे सुभ्रु! इस साधना में कुछ भी अधर्म नहीं है; अपितु इससे महान् धर्म होता है। इसमें स्वेच्छाचार ही आचार कहा गया है। प्रसन्न मन से इसका अनुष्ठान करना चाहिये।।२३।।

कृतार्थं मन्यमानस्तु सन्तुष्टो हृष्टमानसः ।
इत्याचारपरः श्रीमान् जपपूजादितत्परः ॥२४॥
पालकः कुलतत्त्वानां परतत्त्वे प्रलीयते ।
उदिताकृतिरानन्दमयः संसारमोचकः ।
अणिमाद्यष्टसिद्धीशः साधको देवता भवेत् ॥२५॥

इति श्रीकालीतन्त्रे आचारविधिर्नामाष्टमः पटलः

स्वयं को कृतार्थ मान कर सन्तुष्ट तथा प्रसन्न मन से इस आचार में निरत रह कर, श्रीमान् होकर जप-पूजादि में तत्पर होकर कुलतत्त्वों का अनुष्ठान करके साधक परतत्त्व में लीन हो जाता है। कथित आकारविशिष्ट होकर (?) आनन्दमय होकर संसार से मुक्त हो जाता है। अणिमादि अष्ट सिद्धियों का अधीश्वर होकर साधक साक्षात् देव-स्वरूप हो जाता है।।२४-२५।।

कालीतन्त्र का आचारविधि-नामक अष्टम पटल समाप्त

नवमः पटलः

(विद्याफलविधिः)

भैरव उवाच

एवं समस्तविद्यानां राज्ञीं स्तोतुं न शक्यते।
वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि ॥१॥

भैरवदेव कहते हैं—इस प्रकार समस्त विद्याओं की अधीश्वरी की सहस्र मुख से अथवा सौ करोड़ जिह्वाओं से भी स्तुति नहीं की जा सकती।।१।।

सर्वसिद्धिपरा भूमिरनिरुद्धसरस्वती।
तस्मादस्या ज्ञानमात्रात्सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि ॥२॥

वह अनिरुद्ध सरस्वती समस्त सिद्धियों की श्रेष्ठ भूमि है। इसलिये इसके ज्ञानमात्र से ही अष्टसिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।।२।।

अनिरुद्धसरस्वत्या ज्ञानमात्रेण साधकः।
पाण्डित्ये च कवित्वे च वागीशसमतां व्रजेत् ॥३॥

साधक अनिरुद्ध सरस्वती के ज्ञानमात्र से ही पाण्डित्य एवं कवित्व में बृहस्पति के समान हो जाता है।।३।।

तस्य पाण्डित्यवैदग्ध्यविचित्रपदकल्पनात्।
देवा अपि विलज्जन्ते किं पुनर्मानवादयः ॥४॥

उस साधक के पाण्डित्य की निपुणता तथा विचित्र काव्यकल्पना के सामने जब देवगण भी लज्जित हो जाते हैं तो फिर मानवों की तो बात ही क्या है?।।४।।

अस्ति चेत्त्वत्समा नारी मत्समः पुरुषोऽस्ति चेत्।
अनिरुद्धसरस्वत्याः समो मन्त्रोऽस्ति वै तदा ॥५॥

यदि तुम्हारे समान नारी और मेरे समान पुरुष हों, तभी यह सम्भव है कि अनिरुद्ध सरस्वती के समान कोई अन्य मन्त्र भी हो (अर्थात् नहीं हो सकता)।।५।।

अस्या जपो ब्रह्मजपो ज्ञानमस्यात्मचिन्तनम्।
योगसन्धारणा सम्यग् ध्यानमस्या न संशयः ॥६॥

इनका जप ही ब्रह्मजप है, इनका ज्ञान ही आत्मचिन्तन है, इनका सम्यक् ध्यान ही योग का सम्यक् रूप से धारण है; इसमें कोई संशय ही नहीं है।।६।।

महापदि महापापे महाग्रहनिवारणे।
महाभये महोत्पाते महाशोके महामये ।।७।।
महामोहे महासौख्ये महादारिद्र्यसङ्कटे।
महारण्ये महाशून्ये महास्थाने महारणे ।।८।।
दुराख्याने दुरावासे दुर्भिक्षे दुर्निमित्तके।
समस्तक्लेशसङ्घाते स्मरणादेव नाशयेत् ।।९।।

महान् आपत्ति में, महापाप में, महाग्रह-शान्ति में, महाभय में, महान् उत्पात में, महान् शोक में, कठिन पीड़ा में, महामोह में, महासुख में, दरिद्रता के कठिन संकट में, भयानक वन में, महाशून्य में, महास्थान में, कठिन युद्ध में, दुष्ट कथा में, दुष्ट वास में, दुर्भिक्ष में, अशुभ में, समस्त क्लेशसंघात उपस्थित होने पर इस विद्या के स्मरण-मात्र से ही जो कुछ भी अशुभ है, वह विनष्ट हो जाता है।।७-९।।

अस्या ज्ञानं ब्रह्मज्ञानं ध्यानमस्यात्मचिन्तनम्।
तस्मादस्याः समा विद्या नास्ति तन्त्रे न संशयः ।।१०।।

इसका ज्ञान ही ब्रह्मज्ञान है, इसका ध्यान ही आत्मचिन्तन कहा गया है। तन्त्र में इसके समान कोई विद्या नहीं है, यह पूर्णतः निःसन्दिग्ध कथन है।।१०।।

श्मशानशयनो वीरः कुलस्त्रीभिर्विहारवान्।
कुलामृतनिषेवी च कालीतन्त्रार्थचिन्तकः ।।११।।
ब्रह्मादिभवने तस्य समो नास्ति कुतः परः।
स एव सुकृती लोके स एव कुलभूषणः ।।१२।।

जो वीर साधक श्मशान में शयन करके कुलस्त्री के साथ विहार में निरत रहकर कुलामृत का सेवन करता है तथा कालीतन्त्र के अर्थचिन्तन में निरत रहता है, उसके समान ब्रह्मलोकादि में भी कोई नहीं है; फिर अन्य की तो बात ही क्या है? वही साधक सुकृती है एवं वही अपने वंश के अलंकारस्वरूप है।।११-१२।।

धन्या च जननी तस्य येन देवी समर्चिता।
वक्त्रे सरस्वती तस्य लक्ष्मीस्तस्य सदा गृहे ।।१३।।

जिसके द्वारा देवी पूजित होती हैं, उस साधक की जननी धन्य है। उस साधक के मुख में सरस्वती तथा गृह में लक्ष्मी सदा निवास करती हैं।।१३।।

तीर्थानि देहे तिष्ठन्ति येन देवी समर्चिता।
धनेन धननाथश्च तेजसा भास्करोपमः ॥१४॥

जिसके द्वारा देवी पूजित होती हैं, उस साधक के शरीर में सभी तीर्थ विराजित रहते हैं। वह धन में कुबेर के समान तथा तेज में सूर्य के समान होता है।।१४।।

बलेन पवनो ह्येष येन देवी समर्चिता।
गानेन तुम्बुरुः साक्षाद्दाने कर्णसमस्तथा ॥१५॥

जिसके द्वारा देवी पूजित होती हैं, वह बल में वायु के समान, संगीत में तुम्बुरु (गन्धर्व) के समान तथा दान में साक्षात् कर्ण के समान होता है।।१५।।

दत्तात्रेयसमो ज्ञानी येन देवी समर्चिता।
वह्निरिव रिपोर्हन्ता गङ्गेव मलनाशकः ॥१६॥
शुचौ शुचिसमः साक्षादिन्दोरिव सुखप्रदः।
पितृदेवसमः शास्ता कालस्येव दुरासदः ॥१७॥
वारीश इव गम्भीरो निर्घात इव दुर्द्धरः।
बृहस्पतिसमो वाग्मी धरणीसदृशः क्षमी ॥१८॥

जिसके द्वारा देवी की पूजा की जाती है, वह दत्तात्रेय के समान ज्ञानी, अग्नि के समान शत्रुघाती, गंगा के समान मलशोधक, शुचिता में शुचि के समान, चन्द्र के समान साक्षात् सुखदायक, यम के समान शासक, काल के समान दुरासद, समुद्र के समान गम्भीर, निर्घात के समान दुर्धर्ष, बृहस्पति के समान वक्ता एवं पृथ्वी के समान क्षमाशील हो जाता है।।१६-१८।।

कन्दर्पसदृशः स्त्रीणां येन देवी समर्चिता।
अहो भाग्यमहो लोके कुलज्ञानपरायणः ॥१९॥

जिसके द्वारा देवी पूजित होती हैं, वह स्त्रियों के लिये कामदेव के समान हो जाता है। अहा, क्या भाग्य है कि इस लोक में कुलज्ञान-परायण साधक वास करते हैं।।१९।।

तेषां मध्येऽपि यः कोऽपि कालीसाधनतत्परः।
त्यजसि त्वं वरश्चैतत् पुमांसं परमं तथा ॥२०॥
मादृशन्तु क्वचित्काले त्यजसि त्वं कदाचन।
कालीज्ञानिनमासाद्य न त्यजसि कदाचन ॥२१॥

उनमें भी यदि कोई कालसाधन में तत्पर हो जाय, तब यह कहा जा सकता है कि भले ही तुम कभी परमपुरुष का त्याग कर दो, लेकिन काली ज्ञानी को पाकर उसका कभी भी त्याग नहीं करना।।२०-२१।।

न हि कालीसमा विद्या न हि कालीसमं फलम्।
न हि कालीसमं ज्ञानं न हि कालीसमं तपः ॥२२॥

काली के समान कोई विद्या नहीं है, काली के समान कोई फल नहीं है, काली के समान कोई ज्ञान नहीं है एवं काली के समान कोई तपस्या भी नहीं है।।२२।।

ये गुणाः परमेशस्य पञ्चकृत्यविधायिनः।
ते गुणाः सन्ति सर्वज्ञे कालीतत्त्वस्य नान्यथा ॥२३॥

पञ्चकर्मानुष्ठाता परमेश्वर के जो गुण हैं, वे ही गुण कालीतत्त्व के ज्ञाता में विराजित रहते हैं। इसमें अन्य प्रकार की भावना से दोष होता है।।२३।।

कालिकाहृदयज्ञानी लतासाधनतत्परः।
देववन्मानवो भूत्वा लभेन्मुक्तिञ्च शाश्वतीम् ॥२४॥

कालिकाहृदय का ज्ञाता एवं लतासाधना में तत्पर साधक मानव होते हुये भी देवस्वरूप को प्राप्त करके नित्यमुक्त हो जाता है।।२४।।

इति ते कथितं सम्यक् कालिकातत्त्वमुत्तमम्।
अनेन सम्यगास्थाय सर्वधर्मफलं लभेत् ॥२५॥

इति श्रीकालीतन्त्रे विद्याफलविधिर्नाम नवमः पटलः

इस प्रकार मैंने तुमसे यह उत्तम कालीतत्त्व कहा। इस विधि से यथायथ-भावेन उपासना करने से सभी धर्मों का फल प्राप्त होता है।।२५।।

कालीतन्त्र का विद्याफलविधि-नामक नवम पटल समाप्त

दशमः पटलः

(सिद्धविद्याविधिः)

यथा काली तथा दुर्गा यथा दुर्गा तथोन्मुखी।
यथा तारा तथा काली यथा नीला तथोन्मुखी ॥१॥

जैसी काली हैं, वैसी ही दुर्गा हैं। जैसी दुर्गा हैं, वैसी ही उन्मुखी हैं। जो तारा हैं, वे ही काली हैं एवं जो नीला हैं, वे ही उन्मुखी हैं।।१।।

दुर्गायाः कालिकायास्तु ध्यानं सममिहोच्यते।
महाचीनक्रमेणैव पञ्चमी तारा शीघ्रफलप्रदा ॥२॥

दुर्गा तथा कालिका का ध्यान एक ही प्रकार का कहा गया है। महाचीनक्रम की साधना में पञ्चमी विद्या भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली होती है।।२।।

गन्धर्वाख्यक्रमेणैव पञ्चमी भुक्तिमुक्तिदा।
महाचीनक्रमेणैव कालिका फलदायिनी ॥३॥

गन्धर्व नामक क्रम में पञ्चम महाविद्या (दश महाविद्या में पाँचवीं) भोग तथा मोक्ष प्रदान करती हैं। महाचीन क्रम की साधना से ही कालिका फल देती हैं।।३।।

कालिकोग्रमुखी शस्ता दत्तात्रेयविभाविता।
सप्तसप्ततिभेदेन श्रीविद्या विदिता भुवि ॥४॥

दत्तात्रेय ऋषि द्वारा विभावित उग्रमुखी कालिका प्रशस्त हैं। छियासठ प्रकार के भेद से श्रीविद्या पृथ्वी पर प्रसिद्ध है।।४।।

तासान्तु समता ज्ञेया गुप्तसाधनसाधने।
चत्वारिंशत्प्रकारा च भैरवी परिकीर्त्तिता ॥५॥

गुप्तसाधन की प्रक्रिया में उनकी समानता (तुल्यता) जाननी चाहिये। भैरवी विद्या चालीस प्रकार की कही गयी है।।५।।

तासान्तु समता ज्ञेया गुप्तसाधनसाधने।
या या विद्या महाचण्डा तासमेष विधिर्मतः ॥६॥

गुप्तसाधनक्रम में उनकी तुल्यता जाननी चाहिये। महाचण्डा की जो-जो विद्यायें हैं, उनके सम्बन्ध में यही विधि ज्ञेय है।।६।।

महाचीनक्रमेणैव च्छिन्नमस्ता च सिद्धिदा।
यस्मिन्मन्त्रे य आचारस्तस्मिन् धर्मस्तु तादृशः ।।७।।

महाचीनक्रम से ही छिन्नमस्ता देवी सिद्धि प्रदान करती है। जिस मन्त्र का जो आचार है, उसमें धर्म भी उसी प्रकार का है।।७।।

कृतार्थस्तेन जायेत स्वर्गो वा मोक्ष एव वा।
भ्रान्तिरत्र न कर्त्तव्या सिद्धिहानिस्तु जायते ।।८।।

उसके द्वारा कृतार्थता मिलती है, स्वर्ग एवं मोक्ष प्राप्त होता है। इसमें भ्रान्ति की आवश्यकता नहीं है। भ्रान्ति करने से सिद्धिहानि होती है।।८।।

विशुद्धचित्तोऽत्र भवेत् सिद्धिः स्यादपवर्गदा।
एवन्तु तत्क्षणात् सिद्धिविस्मयो नास्ति चापरः ।।९।।
विस्मिता विलयं यान्ति पशवः शास्त्रमोहिताः।

विशुद्धचित्त होने से ही इस साधना में सिद्धि प्राप्त होती है, जिससे अपवर्ग की प्राप्ति होती है। इसके सदृश अन्य कोई विस्मयकारक सिद्धि नहीं होती। इससे विस्मित होने वाले पशु लोग शास्त्रमोहित होकर विनष्ट हो जाते हैं।।९।।

भैरव उवाच

कालिकाहृदयं विद्यां सिद्धिविद्यां महोदयाम् ।।१०।।
पुरा येन यथा जप्त्वा सिद्धिमापुर्दिवौकसः।

भैरवदेव कहते हैं—इस महान् कालिकाहृदयरूप विद्या को सिद्धविद्यारूप जानना चाहिये। पूर्वकाल में देवगण ने जिस प्रकार जप करके सिद्धि प्राप्त किया था, उसे अव सुनो।।१०।।

कामाक्षरं वह्निसंस्थमिन्दिरानादबिन्दुभिः ।।११।।
मन्त्रराजमिदं ख्यातं दुर्लभं पापचेतसाम्।
सुलभं शुभदं भक्त्या साधकानां महात्मनाम् ।।१२।।

ककार, रकार एवं नाद-बिन्दुयुक्त ईकार अर्थात् 'क्रीं' विख्यात मन्त्रराज है। यह पापियों के लिये अत्यन्त दुर्लभ है। भक्तियुक्त महात्मा साधकों के लिये यह साधन-सुलभ एवं मंगलप्रद है।।११-१२।।

टिप्पणी—एकाक्षरमन्त्रमाह—कामाक्षरमित्यादि।कामाक्षरं ककारः, वह्निसंस्थं रेफसंस्थं, इन्दिरा ईकारः, नादः विन्दुश्च एतैर्युतम्। तेन क्रीं इत्येकाक्षरमन्त्र आयातः। अस्य कालिकाहृदयमिति संज्ञा। एकाक्षरमन्त्रस्यार्थस्तु प्राणतोषणीधृतवरदातन्त्रे—

क कालीब्रह्म र प्रोक्तं महामायार्थकश्च ई।
विश्वमातार्थको नादो बिन्दुर्दुःखहरार्थकः।।
तेनैव कालिकादेवीं पूजयेद् दुःखशान्तये। इति।।११-१२।।

त्रिगुणा तु विशेषेण सर्वशास्त्रप्रबोधिका।
अनया सदृशी विद्या नास्ति सारस्वतप्रदा ।।१३।।

त्रिगुणा विद्या (क्रीं क्रीं क्रीं) विशेषतः समस्त शास्त्रों का ज्ञान देने वाली है। इसके समान विद्या प्रदान करने वाली अन्य कोई दूसरी विद्या नहीं है।।१३।।

टिप्पणी—त्र्यक्षरमन्त्रमाह—त्रिगुणा इति। एकाक्षरी विद्या त्रिगुणा विद्या स्थिता। एतेन क्रीं क्रीं क्रीं इति त्र्यक्षरमन्त्र आयातः।।१३।।

आकर्षणवशीकारमारणोच्चाटनं तथा।
शान्तिपुष्ट्यादिकर्माणि साधयेदनयाऽचिरात् ।।१४।।

साधक इस विद्या से अतिशीघ्र आकर्षण-वशीकरण-मारण-उच्चाटन-शान्ति-पुष्टि प्रभृति कर्म की साधना करते हैं।।१४।।

किं वक्तव्यमनेनापि वर्णितुं नैव शक्यते।
जिह्वाकोटिसहस्रैस्तु वक्त्रकोटिशतैरपि ।।१५।।

अधिक क्या कहा जाय, करोड़ों जिह्वाओं एवं सैकड़ों करोड़ मुखों से युक्त होकर साक्षात् शिव भी इस विद्या के माहात्म्य का वर्णन नहीं कर सकते।।१५।।

अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः।
अनया सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति ।।१६।।

इस विद्या के समान विद्या, इसके जप के समान जप, इस विज्ञान के तुल्य विज्ञान न कभी था और न ही भविष्य में होगा।।१६।।

ध्यानपूजादिकं सर्वं साधनञ्च पुरस्क्रिया।
अनिरुद्धसरस्वत्याः समानं सर्वमीरितम् ।।१७।।

इस विद्या का ध्यान, पूजा, पुरश्चरण पूर्व में कहे गये अनिरुद्ध-सरस्वती अर्थात् द्वादशाक्षरा विद्या की तरह ही होता है।।१७।।

टिप्पणी—एकाक्षरत्र्यक्षरमन्त्रयोस्तु ध्यानपूजादिकं प्रयोगः पुरश्चरणञ्च सर्वं द्वाविंशत्यक्षरमन्त्रवत्।।१७।।

रक्तैराकर्षणे पुष्पैः पीतैः स्तम्भनकर्मणि।
मारणे कृष्णपुष्पैस्तु पूजयेद् घोरदक्षिणाम्॥१८॥

आकर्षण में रक्तपुष्प से, स्तम्भन क्रिया में पीत पुष्प से एवं मारण में कृष्ण पुष्प से घोरदक्षिणा का पूजन करना चाहिये।।१८।।

आद्यैकबीजं बीजानां तथैवान्तेऽपि चैककम्।
दक्षिणे कालिके चेति मध्ये संयोज्य मन्त्रवित्॥१९॥
स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य भवेदाकर्षणं महत्।
लोहिताङ्कुशहस्ताञ्च एकशूलधरान्तथा॥२०॥
महाकालसमासीनां ध्यात्वा चाकर्षणं महत्।
स्थावरं जङ्गमञ्चैव पातालतलगन्तथा॥२१॥
आकर्षयति मन्त्रज्ञः किमन्यद्भुवि योषितः।
अयुतैकजपः प्रोक्तः सदाकर्षणकर्मणि॥२२॥

'क्रीं दक्षिणकालिके क्रीं स्वाहा' मन्त्र का उच्चारण करने से विशेष आकर्षण साधित होता है। देवी के एक हाथ में रक्तवर्ण अङ्कुश तथा दूसरे हाथ में एक शूल है। देवी महाकाल के ऊपर समासीन हैं। ऐसा ध्यान करने पर विशेष आकर्षण साधित होता है। मन्त्रज्ञ साधक इस मन्त्र के बल से स्थावर, जंगम एवं पाताल में स्थित का भी आकर्षण साधित कर सकता है। फिर पृथ्वी पर स्थित नारी की तो बात ही क्या है? आकर्षण कर्म में इसका दश हजार जप करना चाहिये।।१९-२२।।

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि वशीकरणमुत्तमम्।
कूर्च्चलज्जाद्वयं बीजद्वयं ठान्तं तथैव च॥२३॥
योजयित्वा जपेद् विद्यामयुतं वशयेद् ध्रुवम्।
ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि येन वश्यं जगत्त्रयम्॥२४॥

अब दूसरे वशीकरण का उत्तम प्रयोग कहा जाता है। इसमें 'हुं ह्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा' मन्त्र का दश हजार जप करना चाहिये। इससे साधक निश्चित रूप से किसी को भी अपने वश में कर सकता है। अब इस विद्या का ध्यान कहता हूँ, जिससे तीनों लोक को वशीभूत किया जा सकता है।।२३-२४।।

नागयज्ञोपवीताञ्च चन्द्रार्द्धकृतशेखराम्।
जटाजूटसमासीनां महाकालसमीपगाम्॥२५॥
एवं कामशराबिद्धा विह्वला काममोहिताः।
स्वं स्वं सन्त्यज्य भर्त्तारं यान्ति लोकत्रयाङ्गनाः॥२६॥

नागरूप यज्ञोपवीत धारण करने वाली, मस्तक पर सुशोभित अर्द्धचन्द्र वाली, जराजूट पर आसीन, महाकाल के समीप में स्थित देवी का ध्यान करना चाहिये। इसके प्रयोग से तीनों लोकों की नारियाँ कामवाण से आबिद्ध होकर विह्वल एवं काममोहित हो जाती हैं एवं अपने-अपने पतियों का त्याग करके साधक के समक्ष उपस्थित हो जाती हैं।।२५-२६।।

अथ वक्ष्ये महाविद्यां सिद्धविद्यां महोदयाम्।
भैरवेण पुरा प्रोक्ता कालीहृदयसंज्ञिता।।२७।।

पूर्व में भैरवदेव द्वारा कथित कालीहृदय नामक अतिशय उदीयमान सिद्धविद्या महाविद्या का वर्णन करूँगा।।२७।।

अस्या ध्यानप्रभावेण कलयामि जगत्त्रयम्।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य हृल्लेखाबीजमुद्धरेत्।।२८।।
रतिबीजं समुद्धृत्य पपञ्चमभगान्वितम्।
ठद्वयेन समायुक्ता विद्याराज्ञी मयोदिता।।२९।।
अनया सदृशी विद्या कालिकायास्तु दुर्लभा।
भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो विराट्छन्द उदीरितम्।।३०।।
सिद्धकाली ब्रह्मरूपा देवता भुवनेश्वरी।
रतिबीजं बीजमस्या हृल्लेखा शक्तिरुच्यते।।३१।।
हृल्लेखया षड्दीर्घेन प्रणवाद्येन कल्पयेत्।
अङ्गषट्कं ततो न्यस्य ध्यात्वा देवीं शिवो भवेत्।।३२।।

इसके ध्यान के प्रभाव से ही मैं तीनों जगत् का ध्वंस करता हूँ। वह मन्त्र है—ॐ ह्रीं क्रीं मे स्वाहा। कालिकाकल्प में इसके समान अन्य कोई विद्या नहीं है। यह अत्यन्त दुर्लभ है। इसके ऋषि हैं—भैरव एवं विराट् छन्द है। सिद्धकाली ब्रह्मरूपा भुवनेश्वरी इसकी देवता हैं। बीज है—क्रीं एवं शक्ति है—ह्रीं। इसका अङ्गन्यास इस प्रकार होता है—ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं कवचाय हुं, ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः अस्त्राय फट्। अंगन्यास करने के उपरान्त ध्यान करके साधक साक्षात् शिवस्वरूप हो जाता है।।२८-३२।।

टिप्पणी—विद्यान्तरमाह—प्रणवं पूर्वमुद्धृत्येत्यादि। प्रणवम् ॐकारम्। हृल्लेखाबीजं ह्रीं। 'रतिबीजं निजबीजम्। तथाच चामुण्डातन्त्रे—

रत्याद्या कालिका पातु द्वाविंशाक्षररूपिणी।

इत्येकवाक्यात्' इति तन्त्रसारकारः। तेन रतिबीजं क्रीं। भगं एकारः, तेन युक्तः

पपञ्चमः मकारः, तेन मे। ठद्वयं स्वाहा। एतेन 'ॐ ह्रीं क्रीं मे स्वाहा' इति षडक्षरमन्त्र आयातः। अस्य महाकालभैरवषिर्विराट् छन्दः सिद्धकालीब्रह्मरूपा भुवनेश्वरी देवता क्रीं बीजं ह्रीं शक्तिः। ॐ ह्रां हृदयाय नमः इत्यादिक्रमेण द्वाविंशत्यक्षरमन्त्रवत् कराङ्गन्यासौ कुर्यात्। सिद्धकाली ब्रह्मरूपा भुवनेश्वरी तु दक्षिणकालिकाया एव रूपभेदः।।२८-३२।।

खड्गोद्भिन्नेन्दुबिम्बस्रवदमृतरसा प्लाविताङ्गी त्रिनेत्रा
सव्ये पाणौ कपालाद्गलदमृतमथो मुक्तकेशी पिवन्ती।
दिग्वस्त्रा बद्धकाञ्ची मणिमयमुकुटाद्यैर्युता दीर्घजिह्वा
पायान्नीलोत्पलाभा रविशशिविलसत्कुण्डलालीढपादा।।३३।।

जो दाहिने हाथ के खड्ग से चन्द्रमा को विदीर्ण करती हैं, जिनकी देह उस विदीर्ण चन्द्र से क्षरित अमृतधारा से प्लवित होता रहता है और वह क्षरित अमृतधारा उनके बाँयें हाथ में स्थित नरकपाल में गिरती जा रही है जिसका वे पान कर रही हैं. जो त्रिनेत्रा हैं, जिनके केश मुक्त—खुले से हैं, जो दिगम्बरा हैं, नरहस्तों से जिनकी मेखला बनी है, जो मणिमय मुकुटों से अलंकृत हैं, जो लपलपाती जीभ वाली हैं, जिनकी देहकान्ति नीले कमल के समान है, सूर्य तथा चन्द्र जिनके कानों के कुण्डल हैं तथा जिनका बाँयाँ पैर आगे की ओर है, वे देवी सबकी रक्षा करें।।३३।।

टिप्पणी—सिद्धकाली ब्रह्मरूपा भुवनेश्वरीध्यानमाह—**खड्गोद्भिन्नेन्द्वित्यादि।** खड्गेन दक्षहस्तस्थितेन उद्भिन्नं विदीर्णं यदिन्दुबिम्बं चन्द्रमण्डलं तस्मात् स्रवन् क्षरन् योऽमृतरसः तेन आप्लावितं अङ्गं यस्याः सा खड्गोद्भिन्नेन्दुबिम्बस्रवदमृतरसाप्लाविताङ्गी। सव्ये पाणौ कपालात्—वामहस्तस्थितकपालभाजनात् गलत् पतत् अमृतं सुधां पिवन्ती पानशीला। एतेन द्विभुजा, दक्षहस्ते खड्गः, वामहस्ते पानपात्रं नरकपालं, इत्यायाति। त्रिनेत्रा। मुक्तकेशी। बद्धकाञ्ची—बद्धा नरकरैरिति शेषः। काञ्ची मेखला यया सा। मणिमयमुकुटाद्यैरलङ्कारैर्युता। दीप्तजिह्वा— दीप्ता प्रकाशमाना जिह्वा यस्याः सा ललज्जिह्वेत्यर्थः। नीलोत्पलाभा— नीलोत्पलस्येव आभा कान्तिर्यस्याः सा, नीलोत्पलसदृशनीलवर्णेत्यर्थः। रविशशिविलसत्कुण्डला—रविशशिभ्यां विलसन्ती शोभमाने कुण्डले कर्णभूषणे यस्याः सा। आलीढपादा— वामपादमग्रतो विन्यस्यावस्थिता 'आलीढं वामपादन्तु प्रत्यालीढन्तु दक्षिणम्' इति गुप्तसाधनतन्त्रवचनात्। अत्रानुक्तेऽपि शवरूपमहादेवोपरिस्थितेयं सम्प्रदायस्वरसात् आलीढपादेत्युक्ता। तेन शवरूपमहादेवस्य हृदये वामपादं उरुद्वये दक्षपादं विन्यस्यावस्थितेति ज्ञेयम्। एवम्भूता देवी पायात् अस्मान् सर्वदा रक्षेत्।।३३।।

जपेद् विंशतिसाहस्रं सहस्रैकेण संयुतम्।
होमयेत्तद्दशांशेन मृदुपुष्पेण मन्त्रवित्।।३४।।
त्रिकोणं कुण्डमालिख्य सिद्धविद्यः शिवो भवेत्।
पूजनञ्च प्रयोगञ्च दक्षिणावदुपाचरेत्।।३५।।

मन्त्रवित् साधक को उपर्युक्त रूप से ध्यान करने के वाद मन्त्र का इक्कीस हजार जप करना चाहिये। तदनन्तर मृदु पुष्पों से जप का दशांश हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् त्रिकोणाकृति कुण्ड बनाकर सिद्ध विद्या वाला वह साधक साक्षात् शिवस्वरूप हो जाता है। इनकी पूजा तथा प्रयोग दक्षिणकालिका के समान ही करना चाहिये।।३४-३५।।

एकाक्षर्या महाकल्पसमानं सर्वमेव वा।
रक्तपद्मस्य होमेन साक्षाद्वैश्रवणो भवेत् ॥३६॥
बिल्वपत्रस्य होमेन राज्यं भवति निश्चितम्।
रक्तप्रसूनहोमेन वशयेदखिलं जगत् ॥३७॥

एकाक्षरी विद्या के अनुरूप ही इस विद्या के भी समस्त प्रयोग होते हैं। रक्त पद्म के होम से साधक साक्षात् वह्निस्वरूप हो जाता है। बिल्वपत्र के द्वारा होम करने से निश्चय ही होता राज्यलाभ करता है।।३६-३७।।

पीतपुष्पस्य होमेन स्तम्भयेद्वायुमप्यथ।
मालतीपुष्पहोमेन साक्षाद्वाक्पतिसन्निभः ॥३८॥

साधक पीतपुष्प के होम से वायु को भी स्तम्भित कर सकता है एवं मालतीपुष्प के द्वारा होम करके साधक साक्षात् बृहस्पति के समान हो जाता है।।३८।।

कृष्णपुष्पस्य होमेन शत्रून् मारयतेऽचिरात्।
अत्र सर्वस्य होमस्य सङ्ख्या स्यादयुतावधि ॥३९॥

कृष्णपुष्प से होम द्वारा शत्रु का मारण किया जाता है। इन समस्त कर्मों में होम की संख्या दश हजार रखनी चाहिये।।३९।।

अस्याः स्मरणमात्रेण महापातककोटयः।
सद्यः प्रलयमायान्ति साधकः खेचरो भवेत् ॥४०॥

इति श्रीकालीतन्त्रे सिद्धविद्याविधिर्नाम दशमः पटलः

इस विद्या के स्मरणमात्र से ही करोड़ों महापातक भी तत्क्षण ही विनष्ट हो जाते हैं एवं साधक खेचर अर्थात् आकाश में उड़ने की शक्ति से सम्पन्न हो जाता है।।४०।।

कालीतन्त्र का सिद्धविद्याविधि-नामक दशम पटल समाप्त

●

एकादशः पटलः

(सामान्यसाधनम्)

भैरव उवाच

अथोच्यते कालिकायाः सामान्यसाधनं प्रिये।
कृतेन येन विधिवत् पलायन्ते महापदः ॥१॥

भैरवदेव कहते हैं—हे प्रिये! अब इसके अनन्तर सामान्य साधनविधि को कहता हूँ। इसका अनुष्ठान करने से सभी आपत्तियाँ पलायन कर जाती हैं।।१।।

शिवाबलिश्च दातव्यः सर्वसिद्धिमभीप्सुभिः।
महोत्पाते महाघोरे महारोगे महाग्रहे ॥२॥
महापदि महायुद्धे महाविग्रहसङ्कुले।
महादारिद्र्यशमने महादुःस्वप्नदर्शने ॥३॥
महाशान्तौ महावश्ये महास्वस्त्ययने तथा।
घोराभिचारशमने घोरोपद्रवनाशने ॥४॥
कूटयुद्धादिशमने कूटशत्रुनिवारणे।
राजादिभयशान्तौ च राजक्रोधप्रशान्तये ॥५॥
न ददाति बलिं यस्तु शिवायै शिवताप्तये।
स पापिष्ठो नाधिकारी कुलदेव्याः समर्चने ॥६॥

सकल सिद्धियों को चाहने वाले को शिवाबलि देनी चाहिये। महोत्पात की शान्ति के लिये, अत्यन्त भयानक स्थिति की समाप्ति के लिये, कठिन रोग के शमन-हेतु, कठिन ग्रहदोष के शमनार्थ, अत्यन्त दारुण विपत्ति के शमनार्थ, महायुद्ध में विजय-हेतु, भीषण संकुल विग्रह के शमनार्थ, भीषण दरिद्रता के शमन-हेतु, अतिशय दुःख की समाप्ति के लिये, महाशान्ति कार्य में, विशेष वशीकरण में, महास्वस्त्ययन में, घोर अभिचार कर्म में, भयंकर उपद्रव की स्थिति में, शान्ति के लिये, कूट युद्ध के प्रशमनार्थ, राजा-प्रभृति के भय की शान्ति के लिये, राजा के क्रोध की शान्ति के लिये एवं मंगल-प्राप्ति के लिये जो शिवा को बलि नहीं प्रदान करते, वे पापिष्ठ होते हैं। वे कुलदेवी की पूजा के अधिकारी नहीं होते।।२-६।।

कुलीनं नावमन्येत कुलज्ञं परिपूजयेत्।
कुलज्ञेषु प्रसन्नेषु कालिकासन्निधिर्भवेत् ॥७॥

कौल की अवमानना नहीं करनी चाहिये। कुलज्ञाता की पूजा करनी चाहिये। कौलगण के प्रसन्न हो जाने पर कालिका का सन्निधि-लाभ होता है।।७।।

अहो धन्यवतां लोके जानाति कुलदर्शनम्।
तेषां मध्ये तु यः कश्चित् कुलदेवीं समर्चयेत् ॥८॥

अहो! भाग्यवानों के इस लोक में वह धन्य है, जो कुलदर्शन को जानता है। उनमें भी वे श्रेष्ठ हैं, जो कुलदेवी का अर्चन करते हैं।।८।।

कुलाचारविहीनो यः पूजयेत् कालिकां नरः।
स स्वर्गमोक्षभागी च न स्यात्सत्यं न संशयः ॥९॥

जो व्यक्ति कुलाचार से रहित होकर कालिका का पूजन करते हैं, वे कभी भी स्वर्ग अथवा मोक्ष के अधिकारी नहीं होते। यह सर्वथा सत्य है, इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये।।९।।

आयुरारोग्यमैश्वर्यं बलं पुष्टिं महद्यशः।
कवित्वं भुक्तिमुक्ती च कालिकापादपूजनात् ॥१०॥

कालिकादेवी के चरणयुगल के पूजन करने से आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, बल, पुष्टि, विशेष यश, कवित्व, भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।।१०।।

शुक्लेन ध्यानयोगेन कविता वशवर्त्तिनी।
पीतेन ध्यानयोगेन स्तम्भयेदखिलं जगत् ॥११॥

शुक्ल ध्यानयोग से कविता वश में हो जाती है। पीत ध्यानयोग से जगत् साधक के द्वारा स्तम्भित हो जाता है।।११।।

कृष्णाभा शत्रुमरणे धूम्राभा वैरिनिग्रहे।
अनया विद्यया मन्त्री स्पृशेत् पातकिनं यदि ॥१२॥
स त्तु संस्पर्शमात्रेण वक्ति सौधीमनर्गलाम्।
कुमारीपूजनं कुर्यात् सर्वधर्मफलाप्तये ॥१३॥

शत्रुमारणार्थ कृष्णाभा देवी एवं शत्रुनिग्रहार्थ धूम्राभा देवी आश्रयणीया हैं। इस विद्या द्वारा यदि साधक पातकी का स्पर्श कर लेता है, तो वह पातकी भी अनर्गल सुधामयी वाणी बोलने लगता है। समस्त धर्म तथा फल की प्राप्ति के लिये कुमारी-पूजन अवश्य करना चाहिये।।१२-१३।।

भैरव उवाच

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि प्रयोगं शत्रुनिग्रहम्।
सर्वान्ते वह्निवनितां योजयित्वाऽयुतं जपेत्॥१४॥

भैरव देव कहते हैं—अब मैं अन्य प्रकार का शत्रुनिग्रह प्रयोग कहता हूँ। एतदर्थ समस्त मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' लगा कर दश हजार जप करना चाहिये।।१४।।

कालिकां द्विभुजां कर्त्तृकपाले सव्यदक्षिणे।
एवं ध्यात्वा तु शत्रूणां मारणं समुपाचरेत्॥१५॥

द्विभुजा, वाम हस्त में असि (तलवार) तथा दक्षिण हस्त में कपाल धारण करने वाली कालिका का ध्यान करके शत्रुओं के मारणार्थ अनुष्ठान करना चाहिये।।१५।।

एवं कालीमतं प्रोक्तं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
अनया विद्यया सम्यक् साधयेत् स्वमनीषितम्॥१६॥

इस प्रकार समस्त सिद्धियों को देने वाले इस काली-प्रयोग को मैंने कहा। इस विद्या द्वारा अपनी इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिये सम्यक् भाव से साधन किया जा सकता है।।१६।।

अनया विद्यया यद् यन्न साधयति साधकः।
तत्तत् सर्वेषु तन्त्रेषु नास्ति सत्यं न संशयः॥१७॥

इस विद्या द्वारा जो सिद्ध नहीं हो सकता, वह समस्त तन्त्रों में नहीं है (अर्थात् क्या सिद्ध नहीं हो सकता)। यह सत्य है तथा नि:सन्दिग्ध है।।१७।।

कालनियन्त्रणात् काली ज्ञानतत्त्वप्रदायिनी।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन यजेदुभयसिद्धये॥१८॥

काल को नियन्त्रण करने के कारण यह देवी काली कही जाती हैं। ये ज्ञानतत्त्व प्रदान करने वाली हैं। इसीलिये साधक काल से रक्षा-हेतु एवं ज्ञानतत्त्व की प्राप्ति के लिये काली की उपासना करता है।।१८।।

कालीमतमिदं दिव्यं भैरवेण प्रकाशितम्।
न कुत्रापि प्रवक्तव्यं साधते च स्वपौरुषम्॥१९॥

भैरवदेव द्वारा यह दिव्य काली-प्रयोग प्रकाशित किया गया है। इसे जहाँ-कहीं प्रकाशित नहीं करना चाहिये। इसके द्वारा अपने पुरुषार्थ का साधन करना चाहिये।।१९।।

एतत्तन्त्रञ्च मन्त्रञ्च ध्यानञ्चैव प्रपूजनम्।
प्रकाशात्सिद्धिहानिः स्यात्तस्माद्यत्नेन गोपयेत्॥२०॥

इस तन्त्र, मन्त्र, ध्यान तथा पूजा को प्रकाशित करने पर सिद्धिहानि होती है; अतः यत्नपूर्वक इसे गोपनीय रखना चाहिये।।२०।।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गोप्तव्यं देवतागणैः ।
यथा मनुष्यो लभ्येत तथा कार्यं महेश्वरि ॥२१॥

यो भक्तः साधयेज्ज्ञानी तस्मै नित्यं प्रकाशयेत् ॥२२॥

इति श्रीकालीतन्त्रे सामान्यसाधनं नामैकादशः पटलः

हे महेश्वरि! इसी कारण इस समस्त प्रयत्नों द्वारा देवताओं से भी गोपनीय रखना चाहिये। मनुष्य इसे जिस प्रकार प्राप्त कर सकें (अधिकारी ही पा सकें), वैसा ही उपाय करना चाहिये। जो ज्ञानी भक्त इसका साधन कर सक, उसके समक्ष इसे नित्य ही प्रकाशित करना चाहिये।।२१-२२।।

कालीतन्त्र का सामान्य साधनविधि-नामक एकादश पटल समाप्त

द्वादशः पटलः

(परमगुह्याचारः)

भैरव्युवाच

त्वयोक्तं पूजनं देव साधनेन पुरष्कृतम्।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि वीरनित्यक्रियां प्रभो ॥१॥

देवी कहती हैं—दे देव! साधना-सहकृत पूजा को आपने कहा। हे प्रभो! अब वीर की नित्याक्रिया को मैं सुनना चाहती हूँ।।१।।

भैरव उवाच

प्रातःकृत्यं ततो न्यास ऋष्याद्यङ्गाङ्गुलैरपि।
वर्णव्यापकविन्यासः पीठन्यासस्ततः परम् ॥२॥

भैरवदेव कहते हैं—प्रातःकृत्य करने के बाद क्रमशः ऋष्यादि न्यास, अंगन्यास, करन्यास, वर्णन्यास, व्यापकन्यास एवं पीठन्यास करना चाहिये।।२।।

ततोऽन्तर्यजनं देवि योगियोगनिशा प्रिये।
पञ्चमानां प्राशनञ्च जपो रात्रौ विधानतः ॥३॥

हे देवि! तदनन्तर अन्तर्याग, रात्रि में योगीसाधकों का योग, पञ्चग्रासग्रहण एवं रात्रि में विधिपूर्वक जप करना चाहिये।।३।।

स्तोत्रपाठो यत्र तत्र समये च वरानने।
वीरश्रद्धा तर्पणञ्च तथालापः स्त्रियामपि ॥४॥

हे वरानने! जिस किसी भी समय स्तुतिपाठ, वीर के प्रति श्रद्धा, तर्पण तथा स्त्रीगण के साथ आलाप करना चाहिये।।४।।

विजयाङ्गीकृतिश्चैव स्वमुखोद्देशिनं तथा।
अप्रकाशः कुलाचारे मृदुभाषा च सर्वतः ॥५॥

मुख में विजया (भांग) रखनी चाहिये। कुलाचार में गोपनीयता रखनी चाहिये और सर्वदा मृदु भाषा बोलनी चाहिये।।५।।

गुर्वनुज्ञामात्रेणैव सर्वाचारविधिः प्रिये ।
एवमादीनि चान्यानि वीरनिन्दा न सुव्रते ॥६॥

हे प्रिये सुव्रते! गुरु के आज्ञाक्रम से सभी आचारविधियों तथा अन्य अनुष्ठानों का प्रयोग करना चाहिये। वीरसाधक की कभी भी निन्दा नहीं करनी चाहिये।।६।।

ऐति परम्परया ह्येन च रुद्रा देवि तच्चीने प्रतिष्ठितम् ।
अन्यत्र विषयेन्नास्ति सत्यमेतद् ब्रबीमि ते ॥७॥

परम्पराक्रम से इस आचार का प्रकाशन रुद्र से देवी के समक्ष किया गया। तदनन्तर इसने चीनक्रम में अवस्थान किया। अन्य किसी विषय में इसका प्रकाशन नहीं है; यह मैं सत्य कहता हूँ।।७।।

वामाचारः कुलाचारश्चीननाथेन शङ्करात् ।
प्रकाशितः शङ्करेण महारुद्रात् प्रकाशितः ॥८॥

इस वामाचाररूप कुलाचार का प्रकाशन महारुद्र से शंकर को हुआ। शंकर से चीननाथ को इसका ज्ञान मिला।।८।।

महाचीनाधिपो देवो माहात्म्येन तयोर्द्वयोः ।
कुलाचारं कुलश्रेष्ठे वामाचारः प्रत्यत्नतः ॥९॥

हे कुलश्रेष्ठ! भगवान शंकर तथा महाचीनाधिपति के माहात्म्य के कारण यह वामाचाररूप कुलाचार प्रकाशित हुआ है। यह अतिशय यत्नपूर्वक अनुष्ठेय है।।९।।

अस्यैवाशेषमाहात्म्यं चीनतन्त्रे मयोदितम् ।
कुलाचारमशेषेण चीननाथेन वेत्त्यपि ॥१०॥

इसका विशेष माहात्म्य मैंने चीनतन्त्र में कहा है। इस कुलाचार को चीननाथ भी अच्छी तरह से जानते हैं।।१०।।

यद्यद् दृष्टं श्रुतं यद्यद्गुरुः साधकवक्त्रतः ।
तत्तत्कार्यं वीरवर्यैस्तेन सिद्धिर्भवेत् प्रिये ॥११॥

हे प्रिये! गुरु का जो-जो आचार दृष्ट होता है तथा साधक के मुख से जो-जो सुना जाता है, वह सब वीराचारी के लिये अनुष्ठेय होता है और उसी से सिद्धि की प्राप्ति होती है।।११।।

क्वचिच्चण्डः क्वचिद्दण्डः क्वचिद्भूतपिशाचवत् ।
क्वचिद् देवार्चनरतः क्वचित्तन्निन्दकस्तथा ॥१२॥

भवेच्छीलरतो वीरो महारुद्रस्य शासनात्।

महारुद्र के शासन में वीर साधक कभी चण्ड, कभी भण्ड, कभी भूत-पिशाच के समान तो कभी देवपूजन में निरत प्रतीत होते हैं। कभी वे देवपूजा के निन्दक होते हैं तो कभी विहित अनुष्ठान में रत हो जाते हैं।।१२।।

भक्षणञ्च विधिं वक्ष्ये पञ्चमादेर्यथाविधि ।।१३।।
आदौ गुरुं स्मरन् पश्चात् कुण्डलीं परिभाव्य च।
आजिह्वान्तस्तर्पणेन भक्षयेन्नतिपूर्वकम् ।।१४।।

अब यथाविधि पञ्चमकार के भक्षण की विधि कहता हूँ। प्रथमतः गुरुस्मरण में निरत होकर कुण्डलिनी का चिन्तन करके प्रणाम करने के उपरान्त जिह्वापर्यन्त तर्पण साधन करके (?) भक्षण करना चाहिये।।१३-१४।।

गुरुं नत्वा तपोज्येष्ठं शक्तेर्नतिपरायणः।
ज्येष्ठत्वं वा कनिष्ठत्वं कुलाचारविधानतः ।।१५।।

सुधापान के पूर्व गुरु को, तप में ज्येष्ठ साधक को तथा शक्ति को प्रणाम करना चाहिये। कुलाचार-विधान के अनुसार ही यहाँ पर ज्येष्ठत्व अथवा कनिष्ठत्व का निर्धारण किया जाता है।।१५।।

अभिषेक्ता गुरुः साक्षात्मन्त्रदेन समः स्मृतः।
अभिषेके विनाभूते प्रधानत्वं करोति यः ।।१६।।
चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्यायशोबलम्।
तद्विधिश्चोत्तरातन्त्रे पाशवेन विमिश्रितः ।।१७।।
वीरैर्ग्राह्यः प्रयत्नेन हंसैः क्षीरं जलाद्यथा।
आचारोऽयं शक्तिमन्त्रे सर्वत्र परिकथ्यते ।।१८।।

अभिषेक्ता गुरु साक्षात् मन्त्रदानकारी गुरु के तुल्य होता है। अभिषेक न होने पर भी जो प्रधानत्व का निरूपण करते हैं, उनकी आयु, विद्या, यश, बल नष्ट हो जाता है। यह अभिषेक विधि उत्तरतन्त्र के पाशवाचार प्रसंग में मिश्रित रूप से कही गयी है। जिस प्रकार हंसगण जल से दूध को अलग करके ग्रहण कर लेते हैं, उसी प्रकार वीर साधक को भी यत्नपूर्वक अपने आचार को छांटकर ग्रहण करना चाहिये। सभी शक्ति-मन्त्रों में यही आचार कहा गया है।।१६-१८।।

विशेषात् कालिकाताराभैरव्यादिषु पञ्चसु।
कालिकातारिणभेदं यः करोति स नारकी ।।१९।।

विशेषत: काली, तारा, भैरवी-प्रभृति पाँच विद्याओं में जो काली एवं तारा में भेद-दर्शन करते हैं, वे नरकगामी होते हैं।।१९।।

यत्र यत्र कालिकेति नाम संश्रूयते प्रिये।
तत्र ताराविधानञ्च युते नात्र सशयः ॥२०॥

हे प्रिये! जहाँ-जहाँ 'कालिका' नाम दिखलाई पड़े, वहाँ मिलित भावेन ताराविधान का अनुष्ठान करना चाहिये। इस विषय में संशय नहीं करना चाहिये।।२०।।

यद्यदन्यत् साधनञ्च नान्यत्रापि नोदितम्।
तत् सर्वं पूर्वपूर्वेण तन्त्रेण ज्ञायते प्रिये ॥२१॥

हे प्रिये! जो-जो साधन-विधि मैंने यहाँ नहीं कही है, उन समस्त विधियों को पूर्व में कहे गये तन्त्रान्तरों से जान लेना चाहिये।।२१।।

न पूजा न्यासजालं वा स्त्रीणां केवलजापतः।
सिद्धिर्भवति देवेशि कुलाचारविधानतः ॥२२॥

हे देवाधिष्ठात्रि! स्त्रियों के लिये किसी पूजा-न्यासादि अनुष्ठान की अपेक्षा नहीं रहती; कुलाचार विधान में केवल जप से ही उनको सिद्धि मिल जाती है।।२२।।

अथ चेत् क्रियते न्यासस्तदा शृणु विधिं प्रिये।
ऋष्याद्यङ्गकपीठानां न्यासं कृत्वा च संस्मरेत् ॥२३॥
ततः साऽहमिति ध्यायेन्महाचीनमतं यथा।
कालीतन्त्रं कोलतन्त्रं तारातन्त्रं तथा प्रिये ॥२४॥
चीनतन्त्रं स्वतन्त्रञ्च युगपद्वक्त्रतः स्मृतम्।
अथ यद्यन्मतं प्रोक्तं तत् पञ्चसु समाचरेत् ॥२५॥

हे प्रिये! यदि वे न्यास करें ही, तब उसकी विधि सुनो। ऋष्यादिन्यास अङ्गन्यास, पीठन्यास करके सम्यक् रूप से इष्टदेव का स्मरण करें। तदनन्तर 'मैं वही हूँ' ऐसा ध्यान करें। यही महाचीन मत है। हे प्रिये! कालीतन्त्र, कोलतन्त्र, तारातन्त्र, चीनतन्त्र तथा स्वतन्त्रतन्त्र एक साथ ही मेरे मुख से निर्गत हैं। जो-जो मत मेरे द्वारा कहा गया है, उन सबका इन पाँचो क्षेत्रों (तन्त्रों) में अनुष्ठान करना चाहिये।।२३-२५।।

गुरुपादप्रसादेन शुभादृष्टस्य योगतः।
आचारः प्राप्यते वीरैर्नात्र कार्यश्च संशयः ॥२६॥
तदैव तुष्टा सा देवी निर्विकल्पः स्वयं यदि ॥२७॥

इति श्रीकालीतन्त्रे परमगुह्याचारं नाम द्वादशः पटलः

गुरुचरण के अनुग्रह से तथा शुभ अदृष्ट के योग से वीर साधकगण के लिये यह आचार प्राप्त हुआ है। इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं करना चाहिये। यदि इस आचार के अनुष्ठान से निर्विकल्प भाव का उदय होता है, तब देवी स्वयमेव प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हो जाती हैं।।२६-२७।।

कालीतन्त्र का परम गुह्याचार-नामक द्वादश पटल समाप्त

समाप्तञ्चेदं श्रीकालीतन्त्रम्

श्रीरुद्रचण्डीतन्त्रम्

भाषाटीकासमन्वितम्

निवेदन

रुद्रचण्डी विधान रुद्रयामल तन्त्रान्तर्गत रुद्रचण्डी तन्त्र के अनुसार सम्पन्न होता है। 'चण्ड' शब्द के उत्तर में 'ईप्' प्रत्यय द्वारा 'चण्डी' शब्द की निष्पत्ति होती है। चण्ड अर्थात् देश-काल आदि से रहित परब्रह्म। इस अर्थ में यह ब्रह्मशक्ति ही है। ब्रह्मधर्म तथा धर्मिब्रह्म स्वरूपत: एक ही है। यह पूर्वमीमांसोक्त जड़धर्म नहीं है; अपितु यह है—ब्रह्मधर्म (चित् शक्ति)। यही है—त्रिकालबाधिता।

रुद्रयामल के पुष्पिकाकल्प के चतुर्थ खण्ड में रुद्रचण्डी स्थित हैं। प्रथमावच्छेद:, मध्यमावच्छेद:, उत्तमावच्छेद: तथा तुरीयावच्छेद: रूप चारो अध्याय में रुद्रचण्डी का वर्णन है। प्रथमावच्छेद में 'दुर्गासप्तशती' के सदृश आख्यान है। मध्यमावच्छेद में है—पूर्णाङ्ग साधनतत्त्व। वहीं पर रुद्रकृत चण्डीस्तुति भी है। उत्तमावच्छेद में फलरहस्या-लोचना कही गयी है। सर्वान्त में है—तुरीयावच्छेद। इसमें रुद्रचण्डी का माहात्म्य तथा प्रलम्बासुर-वध का प्रसंग वर्णित है। समग्र ग्रन्थ में छ: देवीस्तव मिलते हैं। यद्यपि ये सप्तशती ग्रन्थ के ही समान हैं, तथापि इनमें भाव तथा भाषा की पृथकता स्पष्टत: दृष्टिगोचर होती है।

रुद्रचण्डी में अनेक फलों का वर्णन होने पर भी इसका प्रकृष्ट फल है—मातृ-चरणों में अनन्य शरणता। महामाया देवी रुद्रचण्डी के लिये नागोजिभट्ट कहते हैं कि ये विसदृश:—प्रतीति-साधिका ईश्वर शक्ति ही हैं। इस ग्रन्थ का अनुशीलन करने वाले भक्तगण इसकी अलौकिक शक्ति का स्वयं अनुभव करेंगे। अत: अधिक लिखना निष्प्रयोज्य है।

एस० एन० खण्डेलवाल

विषयानुक्रमः

विषयाः	पृष्ठाङ्क
श्रीरुद्रचण्डिकाकवचम्	१
रुद्रचण्डिमन्त्रस्य त्रैलोक्यमङ्गलनाम कवचम्	५
श्रीश्रीरुद्रचण्डी	१४
प्रथमावच्छेदः	१४
मध्यमावच्छेदः	२४
उत्तमावच्छेदः	३२
तुरीयावच्छेदः	४५
रुद्रचण्डीपाठापराधक्षमापनस्तोत्रम्	५२
पाठविधिः	५४

।।श्रीः।।

श्रीरुद्रचण्डीतन्त्रम्

भाषाटीकासमन्वितम्

(रुद्रचण्डी पाठ के पूर्व रुद्रचण्डी-कवच का पाठ आवश्यक है। इसका पाठविधान-क्रम पुस्तक के अन्त में दिया जा रहा है।)

ॐ नमश्चण्डिकायै।

श्रीरुद्रचण्डिकाकवचम्

श्रीरुद्रचण्डिकाकवचस्य भैरवऋषिरनुष्टुप्छन्दश्चण्डिका देवता चतुर्वर्गफलप्राप्त्यर्थं जपे विनियोगः।

श्रीरुद्रचण्डिका कवच के ऋषि भैरव हैं, छन्द अनुष्टुप् है एवं देवता हैं—श्री चण्डिका। चतुर्वर्गफलप्राप्ति के लिये रुद्रचण्डी पाठ का प्रयोग किया जाता है।

श्रीकार्त्तिकेय उवाच

कवचं चण्डिकादेव्याः श्रोतुमिच्छामि ते शिव।
यदि तेऽस्ति कृपा नाथ कथयस्व जगत्प्रभो॥१॥

श्री कार्त्तिकेय भगवान् शिव से कहते हैं—हे जगत्प्रभु! हे शिव! हे कृपानाथ! मैं चण्डिका देवी के कवच को सुनना चाहता हूँ। आप कृपा करके कहिये।।१।।

श्रीशिव उवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि चण्डिकाकवचं शुभम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदातारमायुष्यं सर्वकामदम्॥२॥
दुर्लभं सर्वदेवानां सर्वपापनिवारणम्।
मन्त्रसिद्धिकरं पुंसां ज्ञानसिद्धिकरं परम्॥३॥

श्री महादेव कहते हैं—हे वत्स! सुनो। मैं सर्वकल्याणप्रद चण्डीकवच को कहता

हूँ। यह मंगलमय कवच भोग-मोक्ष देने वाला, आयुप्रदायक तथा सभी इच्छाओं की पूर्त्ति करने वाला है।

सभी पापों का निवारण करने वाला यह देवगण के लिये भी दुर्लभ है। इसको पढ़ने से जीव को ज्ञानसिद्धि तथा मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है।।२-३।।

चण्डिकाकवचस्यास्य ऋषिर्देवोऽथ भैरवः ।
चण्डिका देवता प्रोक्ता छन्दोऽनुष्टुप् प्रकीर्त्तितम् ।।४।।
चतुर्वर्गफलप्राप्त्यै विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।

इस मंगलकारी चण्डिका कवच के ऋषि हैं—भैरव, देवता हैं—स्वयं देवी चण्डिका तथा छन्द अनुष्टुप् है। चतुर्वर्ग फल-प्राप्ति के लिये इसेकवच का विनियोग किया जाता है।।४।।

चण्डिका मेऽग्रतः पातु आग्नेय्यां भवसुन्दरि ।।५।।
याम्यां पातु महादेवी नैर्ऋत्यां पातु पार्वती ।
वारुणे चण्डिका पातु चामुण्डा पातु वायवे ।।६।।
उत्तरे भैरवी पातु ईशाने पातु शङ्करी ।
पूर्वे पातु शिवादेवी ऊर्ध्वे पातु महेश्वरी ।।७।।
अधः पातु सदानन्ता मूलाधारनिवासिनी ।
मूर्द्धनि पातु महादेवी ललाटे च महेश्वरी ।।८।।

चण्डिका मेरे सम्मुख की तथा भवसुन्दरी अग्निकोण में मेरी रक्षा करें। ईशान कोण में महादेवी, नैर्ऋत्य कोण में पार्वती, वायुकोण में देवी चामुण्डा तथा पश्चिम में देवी चण्डिका मेरी रक्षा करें।

उत्तर की ओर भैरवी, ईशानकोण में देवी शंकरी, पूर्व की ओर शिवा देवी तथा ऊर्ध्व में देवी महेश्वरी मेरी रक्षा करें।

मूलाधार-निवासिनी अनन्ता देवी मेरे अधोदेश की रक्षा करें। मस्तक की महादेवी तथा ललाट की देवी महेश्वरी रक्षा करें।।५-८।।

कण्ठे कोटीश्वरी पातु हृदये नलकूबरी ।
नाभौ कटिप्रदेशे च पायाल्लम्बोदरी सदा ।।९।।
ऊर्वोर्जान्वोः सदा पायात् त्वचं मे मदलालसा ।
ऊर्ध्वे पार्श्वे सदा पातु भवानी भक्तवत्सला ।।१०।।

मेरे कण्ठदेश की रक्षा देवी कोटीश्वरी करें। हृदय की देवी नलकूबरी एवं नाभि तथा कटि की सदैव रक्षा लम्बोदरी करें।

मेरे दोनों ऊरु, दोनों जानु तथा चर्मदेश की मदलालसा सदा रक्षा करें। ऊर्ध्वदेश तथा पार्श्वदेश की भक्तवत्सला देवी भवानी सदैव रक्षा करें।।९-१०।।

पादयोः पातु मामीशा सर्वाङ्गे विजया सदा।
रक्तमांसे महामाया त्वचि मां पातु लालसा।।११।।
शुक्रमज्जास्थिसङ्घेषु गुह्यं मे भुवनेश्वरी।
ऊर्ध्वकेशी सदा पापात् नाडीं सर्वाङ्गसन्धिषु।।१२।।

देवी ईशा मेरे पादयुगल की रक्षा करें। देवी विजया सर्वदा सर्वाङ्ग की रक्षा करें। देवी महामाया रक्त तथा मांस की एवं देवी लालसा मेरे चर्मदेश (त्वचा) की रक्षा करें। मेरे शुक्र, मज्जा, अस्थि एवं गुह्यदेश की रक्षा सदैव देवी भुवनेश्वरी करें। मेरे सर्वांग सन्धियों एवं नाड़ियों की रक्षा देवी ऊर्ध्वकेशी करें।।११-१२।।

ॐ ऐं ऐं ह्रीं ह्रीं चामुण्डे स्वाहा मन्त्रस्वरूपिणी।
आत्मानं मे सदा पायात् सिद्धविद्या दशाक्षरी।।१३।।

'ॐ ऐं ऐं ह्रीं ह्रीं चामुण्डे स्वाहा' यह दशाक्षरी सिद्धविद्या सदैव मेरी आत्मा की रक्षा करे।।१३।।

इत्येतत् कवचं देव्याः चण्डिकायाः शुभावहम्।
गोपनीयं प्रयत्नेन कवचं सर्वसिद्धिदम्।।१४।।
सर्वरक्षाकरं धन्यं न देयं यस्य कस्यचित्।।१५।।

देवी चण्डिका का यह कवच अत्यन्त शुभावह है। इसकी अत्यन्त गोपनीयता से रक्षा करनी चाहिये। इसकी गोपनीयता की रक्षा के लिये सदा अत्यन्त प्रयत्नशील रहना चाहिये। यह समस्त सिद्धियों को देने वाला एवं सर्वरक्षाकर है। इसको प्राप्त करके व्यक्ति धन्य हो जाता है। अतः इसे जिस-किसी को (अनधिकारी को) प्रदान करना पूर्णतः उचित नहीं है।।१४-१५।।

अज्ञात्वा कवचं देव्या यः पठेत् स्तवमुत्तमम्।
न तस्य जायते सिद्धिर्बहुधा पठनेन च।।१६।।
धृत्वैतत् कवचं देव्या दिव्यदेहधरो भवेत्।
अधिकारी भवेदेतच्चण्डीपाठेन साधकः।।१७।।

इति श्रीरुद्रयामलतन्त्रे शिवकार्त्तिकेयसंवादे

रुद्रचण्डिकाकवचं समाप्तम्

जो देवी का यह कवच जाने विना चण्डीपाठरूप उत्तम स्तव पढ़ते हैं, उन्हें उसके बहुत बार पढ़ने पर भी सिद्धि नहीं प्राप्त होती। इस कवच को धारण करने वाला दिव्य देहधारी होता है एवं वही चण्डीपाठ का अधिकारी होता है।।१६-१७।।

रुद्रयामल तन्त्रान्तर्गत शिव-कार्त्तिकियसंवाद के अन्तर्गत
रुद्रचण्डिका कवच समाप्त

रुद्रचण्डिमन्त्रस्य त्रैलोक्यमङ्गलनाम कवचम्

श्रीपार्वत्युवाच

देवदेव महादेव दयालो दीनवत्सल।
केन सिद्धिं ददात्यस्तु चण्डी त्रैलोक्यदुर्लभा ॥१॥

भगवती पूछती हैं—हे देवदेव! हे महादेव! हे दयालु! हे भक्तवत्सल! त्रैलोक्य में दुर्लभ चण्डी किस प्रकार से शीघ्र सिद्धि देती हैं, कहिये?।।१।।

श्रीमहादेव उवाच

रुद्रेणाराधिता चण्डी महासिद्धिर्भवेत्तदा।
रुद्ररूपा रुद्रभावा रुद्रभूषा सदा स्थिता ॥२॥

श्री महादेव कहते हैं—भगवती रुद्ररूपा हैं, वे रुद्रभावा तथा रुद्रभूषा रूप से स्थित हैं। देवी चण्डिका ने ही रुद्र द्वारा आराधिता होकर उन्हें महान् सिद्धि प्रदान किया है।।२।।

रुद्रध्येया रुद्रगेहा रुद्राणी रुद्रवल्लभा।
सर्वदा वरदा देवी ब्रह्मज्ञानप्रदायिनी ॥३॥
सर्वपापहरा देवी सर्वरोगक्षयङ्करी।
सर्वारिष्टगतिदर्त्री सर्वग्रहनिवारिणी ॥४॥

ये रुद्र द्वारा ध्येया, रुद्रगेहा तथा रुद्राणी हैं। वे ही रुद्रवल्लभा हैं। वे ही रुद्ररूपेण ध्यानगम्या भी हैं। वे सर्वदा वर देने वाली तथा ब्रह्मज्ञान देने वाली भी हैं।

देवी सर्वपापहारिणी तथा सर्वरोगक्षय-कारिणी हैं। समस्त दु:ख-ताप विदूरित करने वाली तथा सर्वग्रह-तापनिवारिणी हैं।।३-४।।

शिवं देहि शुभं देहि सुखं देहि सदा प्रिये ॥५॥
तुष्टिं पुष्टिं जयारोग्यं मङ्गलानाञ्च मङ्गलम्।
अकालं मरणं वापि काले मृत्युर्यदा भवेत् ॥६॥

हे प्रिये! तुम सदा जगत् को कल्याण देती हो। शुभ, सुख, तुष्टि, पुष्टि तथा मंगलों को भी मंगल देने वाली तुम्हीं हो। तुम आरोग्य तथा जय प्रदान करो। यदि

अकालमृत्यु हो अथवा यथाकाल मृत्यु हो, तब भी साधक चण्डी के स्मरणमात्र से अमृतत्व प्राप्त करता है।।५-६।।

ज्ञात्वा देवगणाः सर्वे चण्ड्यभूद् रुद्रगेहिनी ।
रुद्रचण्डी तदाख्याता त्रैलोक्ये परमेश्वरी ।।७।।

सभी देवता जब यह जान गये कि चण्डी रुद्र की गृहिणी हो गई, तभी से परमेश्वरी चण्डी त्रैलोक्य में रुद्रचण्डी कहलाने लगीं।।७।।

रुद्रोऽभवन्महारुद्रश्चण्डीपाठप्रसादतः ।
तदा शापः प्रदातव्यः स्वीयसिर्द्धियदा शिवे ।।८।।

हे शिवे! इस चण्डीपाठ के प्रभाव से रुद्र भी महारुद्र हो गये और तभी उन्होंने अपनी सिद्धि को शाप दे दिया।।८।।

कृष्णेनाराधिता चण्डी कृष्णचण्डी न सिद्धिदा ।
कृष्णनामधरा देवी सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।।९।।
कृष्णचण्डी महादेवि प्राणान्ते न प्रकाशिता ।
ज्ञात्वा चण्डीं जगत्सर्वं कृष्णशापोऽभवत्तदा ।।१०।।
स्वीयभावे तदा देवी अभिशापं करोति हि ।
तेन ते स्वीयपापेन न सिध्यति कदाचन ।।११।।

कृष्ण द्वारा आराधित होकर यही चण्डी कृष्णचण्डी कहलाती हैं। यह सिद्धिदा नहीं है। कृष्णनामक देवी (कृष्णचण्डी) सभी तन्त्रों में गुप्त हैं।

हे महादेवि! भले ही प्राण चले जायँ, लेकिन कृष्णचण्डी का प्रकाशन कभी नहीं करना चाहिये। इन चण्डी को जान लेने पर समस्त जगत् कृष्णशापमय हो जाता है।

तब अपने रुद्र भाव से देवी ने अभिशाप प्रदान किया। तभी वे अपने पाप से कभी भी सिद्ध नहीं होतीं।।९-११।।

श्रीपार्वत्युवाच

देवदेव दीननाथ दीनबन्धो दयानिधे ।
इदानीं वद मे नाथ चण्डीसिद्धिकरं परम् ।।१२।।
विना ध्यानं विना पूजां विना जपपरायणम् ।
विना होमं विना मन्त्रं विना साधनसंज्ञकम् ।
अनायासेन सिध्यन्ति केनोपायेन तद् वद ।।१३।।

श्री पार्वती कहती हैं—हे देवदेव, दीनानाथ, दीनबन्धु, दयानिधि, देवाधिदेव। आप मुझसे वह (उपाय) कहिये, जिससे देवी चण्डी की परमा सिद्धि प्राप्त हो जाय।

जिससे बिना ध्यान, बिना पूजा, बिना जपपरायणता एवं बिना मन्त्र तथा साधन से अनायास सिद्धि मिल जाय।।१२-१३।।

श्रीमहादेव उवाच

शृणु पार्वति! सुभगे चण्डीसिद्धिकरं परम्।
रुद्रध्येया रुद्रचण्डी प्रसन्ना सर्वदा सती ॥१४॥
तस्याहं कवचं देवि कथयामि शुचिस्मिते।
त्रैलोक्ये सर्वदेवानां साधनेनैव यत्फलम्।
तत्फलं लभते सद्यः कवचाध्यायमात्रतः ॥१५॥
शतमष्टौ पठेत् यस्तु सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।
शतावृत्तिं पठेद् यो हि सप्तद्वीपेश्वरो भवेत्॥१६॥
पञ्चाशद् पाठमात्रेण पञ्चाशद्वर्णसिद्धये।
अष्टाविंशतिपाठेन अष्टसिद्धिकरे स्थिता ॥१७॥
एकादश पठेद्यस्तु रुद्रस्तस्य प्रसन्नधीः।
दशविद्याः प्रसिध्यन्ति यः पठेद्दशधा शिवे ॥१८॥
नवावृत्तिं पठेद्यो हि ग्रहदेवप्रसन्नधीः।
अष्टावृत्तिं पठेद् यस्तु अष्टपाशैर्विमुच्यते ॥१९॥
सप्तधा पाठमात्रेण चिरायुर्भवति ध्रुवम्।
पठेत् षष्टं कर्मभेदे षटकर्मसिद्धये ध्रुवम् ॥२०॥
पञ्च॰ं प्रपठेद् यस्तु पञ्चात्मा च प्रसन्नधीः।
चतुर्थं प्रपठेद् यस्तु चतुर्वेदविदांवरः ॥२१॥
त्रिधा पाठे महेशानि सर्वशान्तिर्भविष्यति।
पाठद्वयं कृतं यद्धि सर्वकाम्यं प्रसाधयेत् ॥२२॥
एकधा पाठमात्रेण चण्डीसिद्धिर्भविष्ययति।
अतः परमहं वक्षे कवचञ्च परात्परम् ॥२३॥

श्री महादेव कहते हैं—हे सुभगे पार्वति! सुनो, चण्डी परम सिद्धि-प्रदात्री है। रुद्रचण्डी का पाठ करने से देवी प्रसन्न होती हैं।

हे शुचिस्मिते! हे देवि! मैं उनके कवच को कहता हूँ। त्रिभुवन में सभी देवताओं

का साधन करने से जो फल प्राप्त होता है, उसी फल को इस कवच के पढ़ने-मात्र से साधक त्रिलोक में प्राप्त कर लेता है। इसका एक सौ आठ पाठ करने वाला सर्वसिद्धीश्वर, एक सौ पाठ करने वाला सप्तद्वीप-अधीश्वर, पचास पाठ करने वाला पचास वर्णों की सिद्धि वाला एवं अट्ठाईस पाठ करने वाला अष्टसिद्धियों को प्राप्त करने वाला होता है। ग्यारह पाठ करने वालों से रुद्रदेव प्रसन्न होते हैं। हे शिवे! जो इसका दश बार पाठ करते हैं, उन्हें दश महाविद्याओं की सिद्धि मिल जाती है। इसके नव पाठ से देवताओं की प्रसन्नता, आठ पाठ से अष्टपाशों से मुक्ति, सात पाठ से दीर्घायु की प्राप्ति, छः पाठ से षट्कर्म सिद्धि का लाभ, पाँच पाठ से पञ्चात्मा की प्रसन्नता, चार पाठ से चतुर्वेद में पारदर्शिता, तीन पाठ से सर्वशान्ति एवं दो पाठ से पाठकारी की सभी कामनायें पूर्ण हो जाती है। इसके एक पाठ से चण्डी की सिद्धि मिलती है। इसीलिये मैं कहता हूँ कि यह कवच सभी कवचों से परात्पर अर्थात् सर्वश्रेष्ठ है।।१४-२३।।

रक्षाकरं महामन्त्रं त्रैलोक्यमङ्गलाभिधम्।
प्रणवो वाग्भवो माया ततः सद्यः सनातनी ।।२४।।
स्थिरा माया ततः कामो लज्जायुग्मं ततः परम्।
एष नवक्षारो मन्त्रः सर्वाशापरिपूरकः।।२५।।
अग्निस्तम्भं जलस्तम्भं वायुस्तम्भं ततः परम्।
बहु किं कथ्यते देवि! त्रैलोक्यस्तम्भनं भवेत्।।२६।।

इन चण्डी देवी का महामन्त्र सर्वरक्षाकर तथा त्रैलोक्य में सर्वत्र मंगल करने वाला है। इसका प्रथमाक्षर है—प्रणव (ॐ), तदनन्तर वाग्भव (ऐं) तथा माया (ह्रीं), तदनन्तर प्रणव (ॐ), तदनन्तर स्थिरा (क्रीं) तथा माया (ह्रीं)। तत्पश्चात् कामबीज (क्लीं) एवं उसके पश्चात् लज्जाद्वय (ह्रीं ह्रीं) लगाना चाहिये। यह नव अक्षरों वाला मन्त्र सर्वाशा-परिपूरक है। मन्त्रोद्धार इस प्रकार होता है—ॐ ऐं ह्रीं ॐ क्रीं ह्रीं क्लीं ह्रीं ह्रीं।

चण्डिका देवी के इस महामन्त्र द्वारा अग्निस्तम्भन, जलस्तम्भन तथा वायुस्तम्भन किया जा सकता है। हे देवि! अधिक क्या कहें? इस महामन्त्र से त्रैलोक्य का भी स्तम्भन किया जा सकता है।।२४-२६।।

कर्षयेदखिलं देवि शोषयेदखिलं जगत्।
मोहयेदखिलान् लोकान् मारयेत् सकलं जगत्।।२७।।
वशयेद् सर्वदेवादीन् ऋतुभेदे महेश्वरि।
सर्वरक्षाकरो मन्त्रः साक्षाद् ब्रह्म न संशयः।।२८।।

हे महादेवि! यह महामन्त्र समस्त जगत् का आकर्षण करने वाला एवं समस्त जगत् का शोषण करने वाला है। यह महामन्त्र अखिल लोकसमूह को मोहित करने में समर्थ है तथा समस्त जगत् का मारण भी यह कर सकता है। हे महेश्वरि! यह महामन्त्र ऋतुभेद से समस्त देवों को वश में करने वाला है। सबकी रक्षा करने वाला यह महामन्त्र निःसन्दिग्ध रूप से साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है।।२७-२८।।

शिखायां प्रणवः पातु शिरसि वाग्भवः प्रिये।
भ्रूमध्ये रक्षते माया हृदयं कालिकावतु ॥२९॥
नाभिं पातु स्थिरा माया तदधः काम रक्षतु।
लिङ्गमूलं पातु लज्जा यजुर्गुह्ये सदाऽवतु ॥३०॥
कटिं पृष्ठं कूर्परञ्च स्कन्धं कर्णद्वयं तथा।
प्रणवो रक्षते देवि मातृभावेन सर्वदा ॥३१॥
कण्ठं गलञ्च चिबुकं ओष्ठद्वयं ततः परम्।
दन्तं जिह्वां तथा रन्ध्रं तदन्ते मुखमण्डलम् ॥३२॥
वाग्भवो रक्षते देवि पितृभावेन सर्वदा।
नासिकां हनुयुग्मञ्च चक्षुषी भ्रूयुगं तथा ॥३३॥
ललाटञ्च कपालञ्च चन्द्रसूर्याग्निमण्डलम्।
सर्वदा रक्षते माया शक्तिरूपे महेश्वरि ॥३४॥

हे प्रिये! (साधक कहे कि) प्रणव मेरे शिखा की तथा वाग्भवबीज शिरःप्रदेश की रक्षा करे। मायाबीज मेरे भ्रूमध्य की तथा कालिकाबीज मेरे हृदय की रक्षा करे। मायाबीज नाभिदेश की तथा उससे नीचे के देश की रक्षा कामबीज करे। लज्जाबीज लिंगमूल की तथा यजुः गुह्यदेश की सदा रक्षा करे। दे देवि! कटि, पृष्ठ, कूर्पर प्रदेश, दोनों स्कन्धों तथा कर्णद्वय की रक्षा प्रणव मातृभाव से करे।

हे देवि! वाग्भवबीज पितृभाव से मेरे कण्ठ, गला, चिबुक, ओष्ठद्वय, दाँत, जिह्वा, रन्ध्र एवं मुख की सदा रक्षा करे। केवल यही नहीं; वह नासिका, जानुयुगल एवं चक्षुद्वय की भी रक्षा करे। हे महेश्वरि! ललाट, कपाल तथा चन्द्र-सूर्यरूप अग्निमण्डल की रक्षा तुम्हारी मायाशक्ति करे।।२९-३४।।

वायुद्वयं ततः सर्वं पञ्जरं हृदि मण्डलम्।
रक्षते कालिकाबीजं कन्यारूपेण सर्वदा ॥३५॥
उदरं मूलदेशञ्च चण्डिके त्वं सदाऽवतु।
रक्तं मांसं तथा मज्जा शुक्राणि मेद एव च ॥३६॥

रक्षेल्लज्जा शक्तिरूपे सगुणा परमा कला।
नखकेशानि सर्वाणि यजुः पातु सदा प्रिये ॥३७॥

कालिकाबीज कन्यारूप से सर्वदा मेरे बाहुद्वय, समस्त पञ्जर तथा हृदयमण्डल की रक्षा करे। देवी चण्डिका मेरे उदर तथा मूलदेश की रक्षा करे। रक्त, मांस, मज्जा, शुक्र, मेद की रक्षा लज्जारूपा सगुणा देवी करें। हे प्रिये! यजुः सर्वदा नख तथा केशों की रक्षा करे।।३५-३७।।

सर्वाङ्गं रक्षते चण्डी सर्वमन्त्रं सकीलकम्।
आत्मा परात्मा जीवात्मा चण्डिका पातु सर्वदा ॥३८॥
साधने चण्डिका पातु सज्ज्ञानं चण्डिकाऽवतु।
सत्सङ्गं चण्डिका पातु सद्योगं चण्डिकाऽवतु ॥३९॥
सत्कथां चण्डिका रक्षेत् सच्चिन्तां चण्डिकाऽवतु।
पूर्वस्यां चण्डिका पातु आग्नेय्यां चण्डिकाऽवतु ॥४०॥
दक्षिणस्यां तथा चण्डी सर्वदा परिरक्षतु।
नैर्ऋत्यां चण्डिका रक्षेत् पश्चिमे चण्डिकाऽवतु ॥४१॥
वायव्यां चण्डिका पातु उत्तरे चण्डिकावतु।
ऐशान्यां चण्डिका पातु ऊर्ध्वाधश्चण्डिका तथा ॥४२॥
चण्डिका रक्षते कन्यां सुतं स्त्री चण्डिकावतु।
भ्रातरं भगिनी सर्वं चण्डिका रक्षते सदा ॥४३॥
बन्धुवर्गकुटुम्बानि दासीदासं ततः परम्।
रक्षते चण्डिका देवी मातृभावान्महेश्वरी ॥४४॥
गजवाजिगवान् सर्वान् जन्तूनां सर्वपर्वसु।
रक्षते चण्डिकादेवी स्वीयभावेन शाम्भवी ॥४५॥

देवी चण्डी मेरे सर्वाङ्ग की रक्षा करें। वे कीलक के साथ सभी मन्त्रों की रक्षा करती है। वे सबकी आत्मा, परमात्मा तथा जीवात्मा की भी रक्षा करती हैं। चण्डिका देवी हमारे साधन, सत् ज्ञान, सत्संग तथा सद्योग की रक्षा करें।

देवी चण्डिका सबकी सत्कथा, सच्चिन्ता, पूर्व दिशा तथा अग्निकोण की रक्षा करें। देवी चण्डी उसी प्रकार से दक्षिण दिशा में, नैर्ऋत्य कोण में, पश्चिम में, वायुकोण में, उत्तर में, ईशान कोण में तथा ऊर्ध्व एवं अध:प्रदेश में सभी की सर्वदा सर्वतोभावेन रक्षा करें।

महेश्वरी देवी चण्डिका हमारे पुत्र, स्त्री, भ्राता, बहन, बन्धुवर्ग, कुटुम्ब प्रभृति, कन्या एवं दास-दासियों की मातृभाव से सर्वदा रक्षा करती रहें। देवी चण्डिका शाम्भवी रूप से सभी के हाथी, अश्व, गवादि पशु तथा सभी जन्तुओं के देह के सभी पर्वों की अपने स्वीय भाव से रक्षा करें।।३८-४५।।

वास्तुवृक्षादिकं सर्वं चण्डिका रक्षते सदा।
सैन्यं स्वसैन्यवर्गाणां चण्डिका परिरक्षतु ।।४६।।
श्मशाने प्रान्तरेऽरण्ये चण्डिका पातु सर्वदा।
राजद्वारे रणे घोरे पर्वते वा रणस्थले ।।४७।।
अग्निवज्रादिदुर्योगे विवादे शत्रुसङ्कटे।
चण्डिका पातु सर्वत्र यथा धेनुः सुतं प्रति ।।४८।।

देवी चण्डिका वास्तुवृक्षादि की सदा रक्षा करे। वे सैन्यवर्ग की भी सर्वदा रक्षा करें। श्मशान, प्रान्तर, अरण्य, राजद्वार, युद्ध की विभीषिका, पर्वत तथा रणस्थल में चण्डिका देवी सर्वदा रक्षा करें।

गौ जैसे अपने वत्स की रक्षा करती हैं, वैसे ही देवी चण्डिका मेरी अग्नि-वज्रादि दुर्योग में, विवाद में, शत्रुसंकट में रक्षा करें।।४६-४८।।

इति ते कथितं कान्ते त्रैलोक्यमङ्गलाभिधम्।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं परिकथ्यते ।।४९।।
इदं कवचमज्ञात्वा चण्डीपाठं करोति यः।
विपरीतं भवेत्सर्वं विघ्नस्तस्य पदे पदे।।५०।।
इदं कवचमज्ञात्वा रुद्रचण्डी पठेद्यदि।
सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि ।।५१।।

हे कान्ते! इस प्रकार मैंने तुमसे त्रैलोक्यमंगलकारी त्रैलोक्यमंगल नामक कवच को कहा। जो इसका पाठ किये बिना रुद्रचण्डी का पाठ करता है, उसका सब कुछ विपरीत हो जाता है, उसे पद-पद पर विघ्न आते हैं एवं शतकोटि कल्प में भी उसका पाठ सिद्ध नहीं हो पाता।।४९-५१।।

तदनन्तं भवेत् सर्वं कवचाध्यायमात्रतः।
धारणे कवचं देवि फलसंख्यापरिपूरकम् ।।५२।।
तत्रैव कवचं देवि सर्वाशापरिपूरकम्।
पञ्चवक्त्रेण कथितं किं मया कथ्यतेऽधुना ।।५३।।

हे देवि! इस कवच के पाठमात्र से अनन्त फल मिलता है तथा इस कवच को धारण करने से फलसंख्या (रुद्रचण्डीपाठ की) अनन्त हो जाती है।

हे देवि! यह कवच समस्त आशाओं का परिपूरक है। अब मैं और क्या कहूँ? मैंने पञ्चानन से इस कवच के फल की बातें कही हैं।।५२-५३।।

भूर्जे गन्धाष्टकेनैव लिखेत्तु कवचं शुभम्।
समन्त्रं कवचं देवि स्वमन्त्रं पुटितं ततः ।।५४।।
गोत्रं नाम ततः कामं पूर्णमन्त्रं लिखेत् प्रिये।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ।।५५।।
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्रतिष्ठां कुरुते ततः।
पूजयेद् विधियुक्तेन पञ्चाङ्गं तदनन्तरम् ।।५६।।
एवं तं धारयेद् यस्तु स रुद्रो नात्र संशयः।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ हृन्नाभिकटिदेशतः।
योषिद् वामभुजे धृत्वा साक्षात्काली न संशयः ।।५७।।

हे देवि! गन्धाष्टक द्वारा इस कल्याणकारी कवच को भोजपत्र पर मन्त्र के साथ (नव अक्षरों वाले उपरोक्त मन्त्र के साथ) लिखकर उसे उसी मन्त्र से पुटित करना चाहिये। हे प्रिये! दोनों पक्ष की अष्टमी तथा चतुर्दशी को (इनमें से किसी भी एक दिन) कवच में नाम, गोत्र, कामना तथा पूर्ण मन्त्र लिखने के पश्चात् प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र से प्रतिष्ठा करके विधि के अनुसार उसका पञ्चाङ्ग पूजन करना चाहिये।

इसे धारण करने से धारण करने वाला साक्षात् रुद्रस्वरूप हो जाता है। यह नि:सन्दिग्ध है। पुरुष को इसे कण्ठ, दक्षिण बाहु, हृदय अथवा नाभिदेश में धारण करना चाहिये। नारियों द्वारा वाम बाहु में धारण करके वे साक्षात् कालीस्वरूपा हो जाती हैं। यह नि:सन्दिग्ध बात है।।५४-५७।।

धनं पुत्रं जयारोग्यं यद्यन्मनसि कामदम्।
तत्तत् प्राप्नोति देवेशि निश्चितं मम भाषितम्।
न सन्देहो न सन्देहो न सन्देहः कदाचन ।।५८।।
देयं शिष्टाय शान्ताय गुरुभक्तिरताय च।
शक्तिध्येयाः शक्तिरताः शक्तिप्राणाः सदाशयाः।।५९।।
एवं तल्लक्षणैर्युक्तं कवचं दीयते क्वचित्।
नित्यं पूजा प्रकर्त्तव्या कवचं परमे शिवे ।।६०।।

हे देवेशि! धन, पुत्र, जय, आरोग्य-प्रभृति जो-जो कामनायें हों, इसे धारण करने से वह सभी प्राप्त होती हैं। यह मैं अपने मुख से कहता हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं है, कोई सन्देह नहीं है, कदापि कोई सन्देह नहीं है।

हे देवि! यह कवच शिष्टजन, शान्तजन तथा गुरुभक्तिरत को ही देना चाहिये। यह शक्तिध्येय, शक्तिरत तथा शक्तिप्राण एवं सदाशयस्वरूप है।

हे शिवे! यदि इस लक्षण वाले इस कवच को उपरोक्त लक्षण वाले को कभी देना हो, तब इस परम कवच की (उसे) नित्य पूजा करनी होगी।।५८-६०।।

अशक्तौ परमेशानि पुष्पं धूपं प्रदापयेत्।
तस्य देहे तस्य गेहे चण्डिका त्वचला भवेत्॥६१॥
खले दुष्टे शठे मूर्खे दाम्भिके निन्दके तथा।
शक्तिनिन्दां शक्तिहिंसा यः करोति स पामरः।
एतेषां परमेशानि सुकृतिर्न कदाचन॥६२॥
न दद्यात्कवचं देवि यदीच्छेदात्मनो हितम्।
दत्ते च सिद्धिहानिः स्याद् दत्ते च शिवहा भवेत्॥६३॥

इति श्रीरुद्रयामलतन्त्रे श्रीपार्वतीरहस्ये त्रैलोक्यमङ्गलं नाम रुद्रचण्डीकवचं समाप्तम्

(ॐ तत्सत् ॐ)

हे परमेश्वरि! उपर्युक्त रूप से पूजन में अशक्त होने पर इस कवच को पुष्प एवं धूप प्रदान करना चाहिये। ऐसा करने से उसके देह में तथा गृह में चण्डिका अचला होकर निवास करती हैं।

शक्तिनिन्दा एवं शक्तिहिंसा करने वाला पामर होता है। हे परमेश्वरि! इनकी कोई सुकृति नहीं रहती। हे देवि! यदि अपने कल्याण की इच्छा हो तब इसे खल, शठ, दुष्ट, मूर्ख, दाम्भिक एवं निन्दक को प्रदान नहीं करना चाहिये। इनको देने से सिद्धि की हानि होती है और यदि तुम ऐसे लोगों को प्रदान करोगी तब तुम भी शिवघातिनी हो जाओगी।।६१-६३।।

त्रैलोक्यमंगलनामक रुद्रचण्डीकवच समाप्त

अथ श्रीश्रीरुद्रचण्डी

प्रथमावच्छेदः

नमो रुद्रचण्डिकायै

ॐ ह्रीं श्रीपार्वत्युवाच

भागवन् भूतभव्येश त्रैलोक्याधिपते हर ।
यदुपाख्यानमाश्चर्यं सौरथेयं वदस्व मे ।।१।।

अन्वयः—श्री पार्वती उवाच—भगवन्, भूतभव्येश, त्रैलोक्याधिपते हर सौरथेयं यद् आश्चर्यम् उपाख्यानं अस्ति तत् मे वदस्व।।१।।

श्री पार्वती रुद्र भगवान् से कहती हैं—हे देवदेव, हे भूत एवं भवनीय गण के ईश्वर, हे त्रिभुवनेश्वर, हे शंकर, देवाधिदेव! आप राजा सुरथ के अत्यन्त विस्मयकारी उपाख्यान का वर्णन करें।।१।।

रुद्र उवाच

अस्याः श्रीरुद्रचण्डिकाया ब्रह्मादय ऋषयोऽनुष्टुप् छन्दश्चण्डिका देवता चतुर्वर्गसाधने रुद्रचण्डिकापाठे विनियोगः।

रुद्रदेव कहते हैं—रुद्रचण्डिका देवी के ऋषि हैं—ब्रह्मादि देवगण, छन्द है—अनुष्टुप् एवं देवता हैं—श्री चण्डिका। धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चतुर्वर्ग के साधनार्थ इसका विनियोग (प्रयोग) किया जाता है।

ॐ सावर्णिरिति विख्यातो मनुरासीन्महेश्वरि ।
वक्ष्ये त्वयि तदुत्पत्तिं शृणुष्व त्वं समाहिता ।।२।।

अन्वयः—महेश्वरि! सावर्णिः इति विख्यातः मनुः आसीत्। तदुत्पत्तिं वक्ष्ये, त्वं समाहिता शृणुष्व।।२।।

हे महेश्वरि! पूर्वकाल में सावर्णि-नामक एक प्रसिद्ध मनु हुये हैं। मैं उनकी उत्पत्ति की कथा तुमसे कहता हूँ, तुम मनोयोग-पूर्वक श्रवण करो।।२।।

पूर्वं यत् सूचितं कान्ते न श्रुतं क्वापि तद्यथा ।
श्रूयतां श्रूयतां रम्ये देवि प्रौढे वराङ्गने ।।३।।

अन्वयः—पूर्वं यत् सूचितं किन्तु तत् यथा क्वापि न श्रुतं, कान्ते रम्ये देवि प्रौढे वराङ्गने त्वं तत् यथा श्रूयतां श्रूयताम्।।३।।

हे प्रिये! पहले जिसे कहा था, लेकिन किसी ने नहीं सुना, हे रमणीये! हे महादेवि! हे प्रौढे! हे श्रेष्ठे! मैं उसे कहता हूँ, तुम सुनो।।३।।

इत्युक्त्वा सव्यहस्तेन चिबुकं गृह्य चुम्बितम्।
वक्त्रारविन्दं सुन्दर्याः कृत्वा चोवाच शङ्करः ॥४॥
अधुनैवागतस्तत्र गणेशस्तन्त्रविद् गुरुः।
प्रणम्य साम्बिकं रुद्रम् उषितं भैरवैः सह ॥५॥

अन्वयः—शङ्करः इति उक्त्वा सव्यहस्तेन सुन्दर्याः चिबुकं गृह्य वक्त्रारविन्दं चुम्वितं कृत्वा च उवाच। अधुना तन्त्रविद् गुरुः गणेशः तत्र आगतः। भैरवैः सह उषितं साम्बिकम् रुद्रम् प्रणम्य अवदत्।।४-५।।

यह कहकर भगवान् शङ्कर ने अपने बाँयें हाथ से देवी का चिबुक पकड़कर उनके मुखारविन्द का चुम्वन करके देवी से कहा। तभी तन्त्रविद् गुरु गणपति वहाँ आ गये। उन्होंने भैरवगणो के साथ वहाँ बैठी देवी अम्बिका के साथ-साथ रुद्रदेव को प्रणाम किया और इस प्रकार कहने लगे।।४-५।।

नायिका योगिनीभिः सा सावधानेन शङ्करी।
कैलासे योगसंस्थाने महद् गुह्यानि श्रूयते ॥६॥

अन्वयः—कैलासे योगसंस्थाने योगिनीभिः सा शङ्करी सावधानेन महद्गुह्यानि श्रूयते।।६।।

कैलास-नामक पर्वत के योगसंस्थान में योगिनीगणों द्वारा कथित महद् गुह्यकथा को देवी शंकरी ने मनोयोग से सुना।।६।।

महामायानुभावेन योऽष्टमः सूर्यसम्भवः।
चैत्रान्मम्बधिपो राजा स नाम्ना सुरथः सुधीः॥७॥

अन्वयः—महामायानुभावेन सूर्यसम्भवः चैत्रात् यः अष्टमः अधिपः सः नाम्ना सुधी सुरथः।।७।।

देवी महामाया के प्रभाव से सूर्य से अष्टम मनु उप्तन्न हुये हैं, वे ही (पूर्वजन्म में) चैत्रवंश में उत्पन्न होकर परम ज्ञानी सुरथ नामक राजा थे।।७।।

पूर्वं स्वारोचिषे जातः सकलेऽवनिमण्डले।
जितः काले नृपैरण्यैः सोऽभूत् कोलाख्यकैनृपः ॥८॥

अन्वयः—पूर्वं स्वारोचिषे सकले अवनिमण्डले जातः काले स नृपैः अन्यैः कोलाख्यकैः नृपः अभूत्।।८।।

पूर्व में वे स्वारोचिष (मनु) के अधिकारकाल में इस भुवनमण्डल में जन्मग्रहण किये थे। कालगत होने पर वे ही अन्य राजगण द्वारा कोलाख्यों के राजा हुये थे।।८।।

तथामात्यैरेव स तैर्वनं यतो नृपाग्रणीः ।
विकेनैव यत्रास्ते वर्यो मेधा महामुनिः ।।९।।

अन्वयः—तथा स नृपाग्रणीः तैः अमात्यैः एव वनं यातः यत्र वर्यः महामुनिः मेधा आस्ते।।९।।

तदनन्तर वे नृपश्रेष्ठ सुरथ अमात्यों द्वारा वन में निर्वासित कर दिये गये। उसी वन में वरणीय महामुनि मेधस् निवास करते थे।।९।।

तत्रातिष्ठत् कियत् कालं विचरन् स तदाश्रमे ।
दृष्टवान् जनमेकञ्च वैश्यं विहरिणं वने ।।१०।।

अन्वयः—सः कियत् कालं तत्र विचरन् अतिष्ठत्। तदाश्रमे वने विहरिणं जनमेकं वैश्यं दृष्टवान् ।।१०।।

उस वन में कुछ काल निवास करने के पश्चात् उन्होंने वन में विचरा करते एक वैश्य को देखा।।१०।।

तमपृच्छन् महाराजः कस्मान्म्लानो भवांस्तुतः ।
राज्ञा पृष्ठः कृतार्थः सन् दुःखितोऽहं भवान् यथा ।।११।।

अन्वयः—ततः महाराजः तम् अपृच्छत्—कस्मात् भवान म्लानः। राज्ञा पृष्टः कृतार्थः सन् अवदत् भवान् यथा दुःखित् तथा।।११।।

राजा सुरथ ने उस वैश्य से पूछा—तुम विषण्ण क्यों हो? तब महाराज से यह बात पूछे जाने पर उसने स्वयं को धन्य मान कर उत्तर दिया—आप जैसे दुःखी हैं, वैसे ही मैं भी हूँ।।११।।

विवेकिनौ तौ मिलितौ प्राप्तावेवान्तिकं मुनेः ।
पृष्टो नृपेण विप्रेन्द्रोऽप्ययं पुत्रैर्निराकृतः ।।१२।।

अन्वयः—विवेकिनौ तौ मिलितौ मुनेः अन्तिकं प्राप्तौ एव। नृपेण विप्रेन्द्रः पृष्टः अयं पुत्रैः निराकृतः।।१२।।

तब दोनों विवेकी व्यक्ति एक साथ उन महामुनि के समक्ष उपस्थित हो गये। वहाँ

महाराज सुरथ ने मुनि से कहा कि यह वैश्य अपने लड़कों द्वारा विताड़ित है।।१२।।

अहं ममत्वकापन्नो राज्ये राज्याङ्गकेष्वपि।
तथाप्येवावयोः कस्माद् हार्दी भवति तेषु च ॥१३॥

अन्वयः—अहं राज्ये राज्याङ्गकेषु अपि ममत्वकापन्नः। तथापि एव आवयोः तेषु हार्दी कस्माद् भवति।।१३।।

मैं राज्य तथा राज्य के अंगों के प्रति ममतावान हूँ। उसके प्रति मेरी इस आसक्ति तथा अनुराग का क्या कारण है?।।१३।।

मेधसोक्तं बलवती महामाया गदाभृतः।
तदा सम्मोह्यते विश्वं सृजत्यवति हन्ति च ॥१४॥

अन्वयः—मेधसा उक्तम् गदाभृतः महामाया बलवती। तया विश्वं सम्मोह्यते, सृजति अवति हन्ति च।।१४।।

मेधस् मुनि कहते हैं—भगवान् विष्णु की महामाया अतीव बलवती है। वही समस्त जगत् को मोहाच्छन्न करती है। वही विश्व की सृजनकारिणी, पालनकारिणी तथा ध्वंसकारिणी है।।१४।।

चेतःसु ज्ञानिनां देवी नित्या भगवती हि सा।
वरदा मुक्तये लोके योगनिद्राभिधीयते ॥१५॥
विश्वाधारा जगन्मूर्त्तिर्दैत्यारेरीश्वरी च सा।
उत्पन्ना परमोत्पन्ना विष्णुनिद्रा मृषार्दिनी ॥१६॥
नन्दजा विन्ध्यसंस्थाना हैमी हरिहरप्रिया।
स्तुतिः प्रीतिः सुरप्रीता कृतिः प्रीतिः पुरावहा ॥१७॥

अन्वयः—सा देवी भगवती ज्ञानिनां चेतःसु नित्या, सा विश्वाधारा जगत् मूर्तिः दैत्यारेः ईश्वरी, सा देवी उत्पन्ना परमोत्पन्ना विष्णुनिद्रा मृषार्दिनी। नन्दजा विन्ध्यसंस्थाना, हैमी, हरिहरप्रिया स्तुतिः प्रीतिः सुरप्रीता कृतिः प्रीतिः पुरावहा लोके सा अभिधीयते।।१५-१७।।

वह देवी महामाया समस्त ऐश्वर्यों से युक्त, विवेकीगण की चित्तस्थिता सनातनी शक्ति है। वे विश्वाधारा, विश्वरूपा देवेश्वरी हैं। वे नित्य होकर भी उत्पन्ना, परमेश्वरी, परमा, विष्णु की निद्राशक्ति, मिथ्याध्वंसकारिणी, नन्दात्मजा, विन्ध्यवासिनी, योगमाया शक्ति, हैमी, हरिहरप्रिया, शक्तिरूपा, स्तुतिशक्तिरूपा, कार्यशक्ति तथा प्रेमशक्तिरूपा सनातनी हैं। वे इस लोक में वरदायिनी, मुक्तिदायिनी तथा योगनिद्रा रूप से अभिहित हैं।।१५-१७।।

योगानिद्रासमापन्नो यदा विष्णुर्जगद्गुरुः ।
तदा द्वावसुरौ घोरौ मधुकैटभसंज्ञकौ ॥१८॥
हरिकर्णमलोद्भूतौ ब्रह्माणं हन्तुमुद्यतौ ।
भीतो ब्रह्मा भक्तियुतस्तामसीं शरणं गतः ॥१९॥
अतुलां योगनिद्राख्यां भक्ताभीष्टां सुरात्मिकाम् ।
स्वाहा-स्वधा-वषड्रूपां शुभां पीयूषवादिनीम् ॥२०॥
अक्षरां बीजरूपाञ्च पालयित्रीं विनाशिनीम् ।
त्रिधा मात्रात्मिकास्थाञ्च अनुच्चार्यां महेश्वरीम् ॥२१॥
महेश्वरीं महामायां मातरं सर्वमातरम् ।
अर्द्धमात्राञ्च सावित्रीं महाविद्यां विनोदिनीम् ॥२२॥

अन्वयः—यदा जगद्गुरुः विष्णुः योगनिद्रासमापन्नः तदा मधुकैटभसंज्ञकौ घोरौ द्वौ असुरौ हरिकर्णमलोद्भूतौ ब्रह्माणं हन्तुम् उद्यतौ। भीतो ब्रह्मा भक्तियुतः तामसीं शरणं गतः। हे देवि! त्वां अतुलां योगनिद्रायां भक्ताभीष्टां सुरात्मिकाम् स्वाहा-स्वधा-वषट्कारां शुभां पीयूषवादिनीम् अक्षरां बीजरूपां च पालयित्रीं विनाशिनीं त्रिधा मात्रात्मिकास्थां अनुच्चार्यां महामायां मातरं सर्वमातरम् अर्द्धमात्रां च सावित्रीं महाविद्यां विनोदिनीं स्तौमि।।१८-२२।।

जब भगवान् जगद्गुरु विष्णु योगनिद्रा में निमग्न थे, तब मधु तथा कैटभ नाम से प्रसिद्ध भयंकर दो असुर भगवान् श्रीहरि के कानों के मैल से उत्पन्न होकर ब्रह्मा की हत्या-हेतु उद्यत हो गये। तब ब्रह्मा ने भयभीत होकर विष्णु की तामसी शक्ति का आश्रयण किया। उस शक्ति की ब्रह्मा इस प्रकार स्तुति करने लगे—हे देवि! आप निरुपमा, महामाया, योगनिद्रारूपा, भक्तों की मनोवांछा को पूरा करने वाली, देवशक्तिरूपा, स्वाहा-स्वधा-वषट्रूपा, कल्याणी, अमृतमयी, परिणामहीना, सर्वाश्रयरूपा, पालयित्री, लयरूपा, प्रणवरूपा, अनुच्चारणीया, भगवती, महेश्वरी, महामाया, जगज्जननीरूपा, निर्गुणा, गायत्रीरूपा, महाविद्या एवं महादेव की मनोरमा हैं। आपकी मैं स्तुति करता हूँ।।१८-२२।।

स चोत्तस्थौ जगद्वन्धोर्युयुधे बाहुयुद्धतः ।
पञ्चवर्षसहस्राणि ततस्तौ दानवौ मृतौ ॥२३॥

अन्वयः—एवं स्तुता षड्ङ्गं त्यक्तवती मधुवैरिणः। स जगद्वन्धोः उत्तस्थौ च पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुयुद्धतः युयुधे। ततः तौ दानवौ मृतौ।।२३।।

इस प्रकार से स्तव द्वारा स्तुति होने पर देवी महामाया ने मधु-कैटभ शत्रु के लिये

षड़ङ्ग का त्याग किया। तब जगत् के पालक एवं जगत् के बन्धु योगनिद्रा से उठ कर इन दानवद्वय से पाँच हजार वर्ष-पर्यन्त युद्धरत रहने के पश्चात् मधु एवं कैटभ का संहार कर दिया।।२३।।

ततो देवासुरं युद्धं शतवर्षमभूत् पुरा।
पराजितोऽभूद् देवेन्द्र इन्द्रोऽभून्महिषासुरः ॥२४॥

अन्वयः—पुरा शतवर्षं देवासुरं युद्धं अभूत्। देवेन्द्रः पराजितः अभूत् च महिषासुरः इन्द्रः अभूत् ।।२४।।

प्रसचीन काल में एक बार एक सौ वर्ष-पर्यन्त देवताओं एवं असुरों में युद्ध हुआ। उस युद्ध में देवराज इन्द्र पराजय को प्राप्त हुये एवं तत्पश्चात् महिष नामक असुर देवताओं का अधिपति बना।।२४।।

ततः सा तामसी देवी देवतेजःसमुद्भवा।
जघान सप्तसेनान्यश्चिक्षुराख्यमुखांस्तथा ॥२५॥
उग्रवीर्यादिकानाञ्च सेनाश्च चतुरङ्गिणीः।
खुरक्षेपादिकोन्मत्तं मायिकं महिषं रणे ॥२६॥
माहिषं सैंहिकं रूपं पौरुषं हास्तिकं तदा।
द्वे रूप्यञ्च यथा कृत्वा जघान वरवर्णिनी ॥२७॥

अन्वयः—ततः सा देवी तामसी देवतेजःसमुद्भवा चिक्षुराख्यमुखां सप्तसेनान्यः तथा उग्रवीर्यादिकानां च चतुरङ्गिणीः सेनाः जघान। तदा क्षुरक्षेपादिकोन्मत्तं मायिकं महिषं तदा माहिषं सैंहिकं हास्तिकं वरवर्णिनि यथा कृत्वा जघान।।२५-२७।।

तदनन्तर वह देवी तामसी ने देवतेज से प्रकट होकर चिक्षुरादि प्रमुख सात सेनानायकों तथा उग्रवीर्यादि चतुंरगिणी सेना का संहार कर दिया। तदनन्तर क्षुराघात आदि से उन्मत्त मायिक महिष का रण में वध किया। तब वह असुर कभी महिषरूप, कभी सिंहरूप अथवा हस्तिरूप धारण करनें लगा। वरवर्णिनी देवी महामाया तामसी ने जिसे जैसे हुआ, वैसे ही मार दिया।।२५-२७।।

हिमालये स्थितैर्देवैः स्तुता दैत्यनिपीड़ितैः।
कालिका शिवदूती चामुण्डा मूर्त्तिधरा परा ॥२८॥
सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा धूम्रनेत्रं निपातितम्।
चण्डं मुण्डं रक्तबीजं रक्तबिन्दुसमुद्भवम् ॥२९॥
कन्वण्वयं(?) कोटिवीर्यं कालकेयञ्च कालकम्।
धौम्रं मौर्यं दौर्हृदञ्च षडशीतिसहस्रकम् ॥३०॥

कालकेयादिसैन्यञ्च सर्वं नायकभूषितम् ।
पुनः शुम्भं निशुम्भञ्च दैत्यराजं जघान सा ॥३१॥

अन्वयः—हिमालये स्थितैः देवैः पीड़ितैः स्तुता परा कालिका शिवदूती चामुण्डा मूर्त्तिधरा सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा धूम्रनेत्रं निपातितम्। ततः सा चण्डं मुण्डं रक्तबिन्दुसमुद्भवं रक्तबीजं कन्वण्ययं (?) कोटिवीर्यं च कालकेयं कीलकं धौम्रं मौर्यं दौर्हृदम् च तेषां षड़शीतिसहस्रकं नायकभूषितं कालकेयादिसैन्यं च सर्वं च हतम्। पुनः शुम्भं निशुम्भञ्च दैत्यराजं जघान।।२८-३१।।

पीड़ित देवताओं द्वारा हिमालय पर स्थित परा कालिका शिवदूती चामुण्डा देवी इस प्रकार स्तुत होने पर सुग्रीव के वचन को सुनकर धूम्रनेत्र को प्रकट किया। तदनन्तर उसने रक्तकणों से उत्पन्न रक्तबीज, कोटिवीर्य, कालकेय, कीलक, धौम्र, मौर्य, दौर्हृद नामक असुरों के साथ-साथ नायकों से विभूषित कालकेयादि समस्त सेनाओं का संहार किया। इसके बाद पुनः शुम्भ तथा निशुम्भ का वध किया।।२८-३१।।

देवानां स्थानमादत्तं शेषं पातालसंस्थितम् ।
कृत्वा रमति कल्याणी रणस्थल्यां रणप्रिया ॥३२॥

अन्वयः—ततः देवी देवानां स्थानम् आदत्तं शेषं पातालसंस्थितम् कृत्वा कल्याणी रणप्रिया रणस्थल्यां रमति।।३२।।

तब देवी कल्याणी ने देवगण को स्वर्गराज्य प्रदान किया तथा बचे हुये असुरों को पाताल में स्थान देकर रणप्रिया देवी तामसी रणस्थली में आनन्द करने लगी।।३२।।

तदा बृहस्पतिमुखा महर्षिसुरसिद्धकाः ।
स्तोत्रैर्नानाविधैरेतैः स्तुतिञ्चक्रुरनुत्तमाम् ॥३३॥

अन्वयः—तदा महर्षि-सुर-सिद्धकाः बृहस्पतिमुखाः नानाविधैः एतैः स्तोत्रैः उत्तमाम् स्तुतिं चकार।।३३।।

तब महर्षिगण, देवगण, सिद्धगण ने देवगुरु बृहस्पति को आगे करके नाना प्रकार के इन स्तवों से देवी की उत्तम स्तुति करना प्रारम्भ किया।।३३।।

देवस्तुतिः

कात्यायनी मातृकाख्या अपां रूपां विशोकिनी ।
वैष्णवी नारसिंही च वराही च महेश्वरी ॥३४॥
कौमारी च तथेन्द्राणी ब्रह्माणी चाग्निरूपिणी ।
महाकाली महालक्ष्मीर्महाकल्पा सरस्वती ॥३५॥

एकवीरा भ्रामरी च तथैवाष्टभुजा शिवा।
दशहस्ता सहस्रभुजा सर्वशक्तिस्वरूपिणी ॥३६॥

अन्वयः—देवी रुद्रचण्डिका कात्यायनी मातृकाख्या अपांरूपा विशोकिनी वैशणवी नारसिंही च वाराही च इन्द्राणी तथा ब्रह्माणी च अग्निरूपिणी महाकाली महालक्ष्मी महाकल्पा सरस्वती एकवीरा भ्रामरी तथा एव अष्टभुजा शिवा दशहस्ता सहस्रभुजा सर्वशक्तिस्वरूपिणी।।३४-३६।।

हे देवि रुद्रचण्डिके! साक्षात् कात्यायिनी आप मातृकारूपा, जलशक्तिरूपा तथा शोकहारिणी हैं। आप वैष्णवी, नारसिंही तथा वाराही एवं माहेश्वरी भी हैं। देवी रुद्रचण्डिके! आप कौमारी, इन्द्राणी, ब्रह्माणी तथा अग्निरूपिणी हैं। आप महाकाली, महालक्ष्मी, महाकल्पा तथा वाग्देवी भी हैं। हे देवि! आप एकवीरा, भ्रामरी, आठ भुजाओं वाली एवं शिव-शक्तिरूपा हैं। आप दश हाथों वाली, सहस्र भुजाओं वाली तथा सर्वशक्तिस्वरूपा हैं।।३४-३६।।

मुनेस्तस्योपदेशेन मृण्मयीं मधुमासतः।
मूर्त्तिं निर्माय तां पूजाञ्चक्रतुर्वत्सरत्रयम् ॥३७॥
तत आगत्य सा देवी ताभ्यामिष्टं वरं ददौ।
दुर्गावरं समालभ्य सूर्यवीर्यसमुद्भवः ॥३८॥
मन्वन्तराधिपः श्रीमान् सुरथः सम्भविष्यति।
समाधिज्ञानमासाद्य मुक्तोऽभूत्तत्प्रसादतः ॥३९॥

अन्वयः—तस्य मुनेः उपदेशेन मृण्मयीं मूर्त्तिं निर्माय मधुमासतः वत्सरत्रयं पूजां चक्रतुः। ततः सा देवी आगत्य ताभ्यां इष्टं वरं ददौ। दुर्गावरं समालभ्य सूर्य-वीर्य-समुद्भवः श्रीमान् सुरथः मन्वन्तराधिपः सम्भविष्यति। समाधिः ज्ञानं आसाद्य तत् प्रसादात् मुक्तः अभूत्।।३७-३९।।

तब मुनि मेधस् के उपदेश से दोनों ने (सुरथ तथा समाधि ने) देवी की मृण्मयी प्रतिमा बना कर चैत्र मास से लगाकर तीन वर्ष-पर्यन्त देवी का पूजन किया।

तदनन्तर देवी चण्डिका ने आविर्भूत होकर उनको वांछित वर प्रदान किया। देवी दुर्गा का वर प्राप्त कर सूर्यवीर्य से उत्पन्न (पुनर्जन्म में) होकर सुरथ राजा मन्वन्तर के अधिपति हो गये एवं समाधि वैश्य ने देवी की कृपा प्राप्त करके ज्ञानलाभ द्वारा भव-बन्धन से मुक्ति प्राप्त किया।।३७-३९।।

इत्थं चण्डीं पठेद्यस्तु द्विजो वा प्रतिवासरम्।
कुजे वा शनिवारे वा पठन् सर्वफलं लभेत् ॥४०॥

अन्वयः—इत्थं प्रतिवासरम् वा कुजे वा शनिवारे वा द्विजः यः तु चण्डीं पठेत्, स पठन् सर्वफलं लभेत्।।४०।।

इस प्रकार से प्रतिदिन अथवा केवल शनि अथवा मंगलवार को जो भी ब्राह्मण चण्डीपाठ करता है, उसे समस्त फलों की प्राप्ति होती है।।४०।।

एकावृत्त्या भवेत् सौख्यं त्रिरावृत्त्योपसर्गतः।
स्यान्मुक्तो ग्रहदोषाच्च पञ्चावृत्तं पठेद्यदि ।।४१।।
सप्तावृत्तं महाभीतौ नवावृत्तञ्च शान्तितः।
बाजपेयफलञ्चापि रुद्रावृत्त्याश्वमेधिकम् ।।४२।।
गोमेधनरमेधस्य शत्रुनाशं तथार्द्धतः।
मन्वावृत्त्या सुखीभूयात् कलावृत्त्याभवन्धनी ।।४३।।
यथाकामं सप्तदशे तथा चाष्टदशे शुभम्।
नारी प्रियतमा याति विंशावृत्त्या ऋणं हरेत् ।।४४।।
पञ्चविंशाद् भवेत् स्वर्गी शतावृत्त्या तव प्रियः।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या राजसूयफलं लभेत्।
अग्निहोत्री नित्यपाठात् त्यजेद्देहं हरेर्द्रवे ।।४५।।
सहस्रावृत्तिपाठस्य फलं किं स्याद् वरानने।
तद् वक्तुं न हि शक्नोमि सत्यं वर्षायुतैरपि।
इत्युक्तं मम सर्वेशि अरिसङ्घविघातकम्।
सर्वेषाञ्चैव वर्णानां विद्यानाञ्च यशस्विनी।
इयं योनिः समाख्याता सर्वतन्त्रेषु सर्वदा ।।४६।।

इति श्रीमदागमसन्दर्भे श्रीमद्रुद्रयामले रुद्रचण्डिकायां हरगौरीसंवादे चण्डीरहस्यं नाम प्रथमावच्छेदः पटलः

अन्वयः—एकावृत्त्या सौख्यं भवेत्, त्रिरावृत्त्या उपसर्गतः मुक्तः स्यात्, च यदि पञ्चावृत्तं पठेत् ग्रहदोषात् मुक्तः स्यात्। यदि सप्तावृत्तं महाभीता, नवावृत्तं शान्तितः वा रुद्रावृत्ता अश्वमेधिकम् च बाजपेयफलं अपि भवति। तथा अर्द्धतः गोमेध-नरमेधस्य शत्रुनाशः। मन्वावृत्त्या सुखी भूयात्, कलावृत्त्या धनी भवेत्। सप्तदशे यथाकामं तथा अष्टादशे शुभं भवेत्। विंशावृत्त्या नारी प्रियतमा याति च ऋणं हरेत्। पञ्चविंशाद् स्वर्गं भवेत्, शतावृत्त्या तव प्रियः भवेत्। अष्टोत्तर-शतावृत्त्या राजसूयफलं लभेत्। नित्यपाठात् अग्निहोत्री भवेत् हरेः द्रवे देहं त्यजेत् च। हे वरानने! सहस्रावृत्तिपाठस्य फलं किं स्याद् सत्यं तद् वक्तुं वर्षायुतैः अपि न हि शक्नोमि। हे सर्वेशि! मम अरिसंघविघातकं उक्तं

इति। सर्वेषां च एवंवर्णानां विद्यानां च यशस्विनी च सर्वदा सर्वतन्त्रेषु इयं योनि: समाख्याता।।४१-४६।।

इस रुद्रचण्डी की एक आवृत्ति पाठ से समस्त सुखलाभ होता है। तीन आवृत्ति पाठ से समस्त उपसर्गों से मुक्ति मिलती है। पाँच आवृत्ति पाठ से समस्त ग्रहदोष शान्त हो जाते हैं। सात आवृत्ति पाठ से समस्त महाभय दूर हो जाते हैं। नव आवृत्ति पाठ से शान्ति मिलती है। ग्यारह आवृत्ति पाठ से समस्त अश्वमेध एवं वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है। बारह आवृत्ति पाठ से गोमेध एवं नरमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति तथा शत्रु का नाश होता है। चौदह आवृत्ति पाठ से मनुष्य को समस्त प्रकार के सुख उपलब्ध होते हैं। सोलह आवृत्ति पाठ से पाठ करने वाला धनी हो जाता है। सत्रह आवृत्ति पाठ करने से मनुष्य अपनी कामनाओं का फल प्राप्त करता है। अट्ठारह आवृत्ति पाठ से पाठ करने वाले का सब प्रकार से कल्याण होता है। बीस आवृत्ति पाठ से पाठ करने वाले को मनोरमा स्त्री मिलती है तथा उसके ऋण समाप्त हो जाते हैं। पच्चीस आवृत्ति पाठ से मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति होती है। एक सौ आवृत्ति पाठ से मनुष्य देवी का प्रिय होता है। एक सौ आठ आवृत्ति पाठ से मनुष्य को राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त होता है।

इसका प्रतिदिन पाठ करने वाला अग्निहोत्री हो जाता है और गंगातट पर उसकी मृत्यु होती है। हे वरानने! इसके एक हजार आवृत्ति पाठ के फल का मैं दश हजार वर्षों में भी वर्णन नहीं कर सकता। हे भगवति सर्वेशि! इस प्रकार देवगण के शत्रुकुल के ध्वंस की बातें कही गयीं। यह रुद्रचण्डी समस्त विद्याओं तथा समस्त वर्णों में यशस्विनी है। इसीलिये इसे समस्त तन्त्रों में योनिरूप माना गया है।।४१-४६।।

श्रीरुद्रचण्डी का प्रथमावच्छेद पटल समाप्त

मध्यमावच्छेदः

रुद्र उवाच

रहस्यं चण्डिकादेव्या विदितं भुवनत्रये ।
कायवाक्चित्तशुद्धः सन् पठन् प्रियतमो भवेत् ॥१॥
रुद्रचण्डी महापुण्या त्रिगुणाख्या विधातृका ।
तारिणी तरुणी तन्वी तन्त्रिका विश्वरूपिका ॥२॥
विरोधिनी विप्रचित्ता वाणीवर्णावबोधिका ।
वासिनी वनिता विद्या वरारोहा विमोहिनी ॥३॥
बगला शङ्करी शान्तिः शुभा क्षेमङ्करी दया ।
महात्मिका मनोरूपा सीता माया मलापहा ॥४॥
माता भगवती शक्तिः शिवा साध्या सुरेश्वरी ।
सर्वाणी सिंहसंवाहा शम्भुवक्षःस्थलस्थिता ॥५॥

अन्वयः—चण्डिकादेव्याः रहस्यं भुवनत्रये विदितम्। काय-वाक्-चित्तशुद्धः सन् पठन् चण्डिकादेव्याः प्रियतमः भवेत्। रुद्रचण्डी महापुण्या त्रिगुणाख्या विधातृका तारिणी तरुणी तन्वी तन्त्रिका विश्वरूपिका विरोधिनी विप्रचित्ता वाणी-वर्ण- अववोधिका वासिनी वनिता विद्यालक्षणा वरारोहा विमोहिनी बगला शङ्करी शान्तिः शुभा क्षेमङ्करी दया महात्मिका मनोरूपा सीता भगवती शक्तिः मलापहा। माता भगवती शक्तिः शिवा साध्या सुरेश्वरी सर्वाणी सिंहसंवाहा च शम्भुवक्षः-स्थलस्थिता।।१-५।।

रुद्रचण्डिका का रहस्य त्रिभुवन में विदित है। जो शुद्धकाय, वाक्, मन वाला होकर इस स्तवरहस्य का पाठ करते हैं, वे देवी के अतीव प्रिय हो जाते हैं। ये देवी महापुण्य देने वाली, त्रिगुण-तारतम्य-विधायिनी, अन्तर्यामीरूपेण विधात्री हैं। ये तारिणी, तन्वी, योनिरूपा तथा विश्वरूपा हैं। ये विरोधिनी, विप्रचित्ता, वाणीरूपा, अकारादि समस्त वर्णरूपा (ओंकारमयी), वासिनी (ब्रह्माण्डाश्रयिणी), जगन्नारीरूपा, महावाक्यरूपा, विद्या (ब्रह्मविद्या)रूपा, भगवती तथा विश्वमोहिनी हैं। ये ही बगला महाविद्या, महादेवी, ब्रह्माण्डशान्तिरूपा, समस्त प्रकार के शुभ करने वाली, मंगलप्रदा, दयारूपा, महान् आत्मारूपा, मनोरूपा, सीता, भगवती, सर्वशक्तिमयी एवं मालिन्य

दूर करनें वाली हैं। ये माता, भगवती, शक्ति, शिवा, साध्या, सुरेश्वरी, सर्वाणी, सिंहवाहिनी तथा शम्भु के वक्ष पर आसीन रहने वाली भी हैं।।१-५।।

एकावृत्तिं संश्रृणोति नन्दिकेशो महामनाः ।
विनायकस्त्रिरावृत्तिं ग्रहाः पञ्चाथ भैरवाः ॥६॥

अन्वयः—महामना नन्दिकेशः रुद्रचण्डिकायाः एकावृत्तिं संश्रृणोति। विनायकः त्रिरावृत्तिं, ग्रहाः तथा भैरवाः पञ्च श्रृण्वन्ति।।६।।

महामना नन्दिकेश्वर ने इसकी एक आवृत्ति सुनी थी। गणेश ने तीन आवृत्ति तथा ग्रहगण एवं भैरवगण ने इसकी पाँच आवृत्ति सुनी थी।।६।।

श्रृण्वन्ति कामदाः सप्त मानवो नवधावृत्तिम् ।
अर्कावृत्तिञ्च देवेन्द्रो देवैः सिद्धादिभिस्तथा ॥७॥

अन्वयः—कामदाः सप्त, मानवः नवधा आवृत्तिम् श्रृण्वन्ति। देवेन्द्रः अर्कावृत्तिं तथा देवैः च सिद्धादिभिः।।७।।

कामदगण ने सात आवृत्ति तथा मानवों ने नव आवृत्ति सुनी हैं। देवराज इन्द्र, प्रमुख देवगण एवं सिद्धगण ने बारह आवृत्ति सुनी है।।७।।

रुद्रावृत्तिं रुद्रगणाः सादराः सुमनस्तथा ।
नवावृत्तिं दक्षराजः कलावृत्तिं तथा शची ॥८॥

अन्वयः—सादराः तथा सुमनाः रुद्रगणाः रुद्रावृत्तिम्। यक्षराजः नवावृत्तिं तथा शची कलावृत्तिम्।।८।।

हृदयवान तथा सुमना रुद्रगण ने ग्यारह आवृत्ति तथा यक्षराज कुबेर ने नव आवृत्ति एवं इन्द्रपत्नी शची देवी ने सोलह आवृत्ति सुनी है।।८।।

समुद्रजा सप्तदश ऋषिदारा दशाष्टधा ।
विंशावृत्तिञ्च शमनः पञ्चविंशं गदाधरः ॥९॥

अन्वयः—समुद्रजा सप्तदश ऋषिदारा दशाष्टधा शमनः विंशावृत्तिं संश्रृणोति गदाधरः पञ्चविशम्।।९।।

लक्ष्मी ने सत्रह आवृत्ति तथा ऋषिपत्नीगण ने अट्ठारह आवृत्ति सुनी है। शमन (धर्मराज) ने इसकी बीस आवृत्ति सुनी है तथा गदाधर विष्णु ने स्वयं पच्चीस आवृत्तियों को सुना है।।९।।

शतावृत्तिं योगिनीनां ब्रह्मा साष्टशतं सुरैः ।
सहस्रार्द्धं नायिकानां तदूर्ध्वं शक्तिभिः सह ॥१०॥

अन्वयः—शतावृत्तिं योगिनीनां शृणोति, अष्टशतावृत्तिं ब्रह्मादिसुरैः शृणोति, नायिकानां सहस्त्रार्द्धं शृण्वन्ति, शक्तिभिः तदूर्ध्वं शृणोति।।१०।।

योगिनीगणों ने शतावृत्ति सुनी, आठ सौ आवृत्ति ब्रह्मादि सुरगणों ने सुनी। नायिकागणों ने पाँच सौ आवृत्ति तथा शक्तियों ने उससे अधिक आवृत्ति सुनी।।१०।।

शतावृत्तिं नवावृत्तिमष्टावृत्तिं महेश्वरी।
श्रुत्वाभीष्टं फलं दद्यादन्यथा सूतघातिनी॥११॥

अन्वयः—शतावृत्तिं नवावृत्तिं अष्टावृत्तिं श्रुत्वा महेश्वरी अभीष्टं फलं दद्यात् अन्यथा महादेवी सूतघातिनी स्यात्।।११।।

एक सौ आवृत्ति, नव आवृत्ति, आठ आवृत्ति सुनकर महादेवी साधक को अवश्य ही अभीष्ट फल देती हैं; अन्यथा वे सूतघातिनी हो जाती हैं।।११।।

महामायावरं लब्ध्वा सावर्णिरष्टमो मनुः।
अभवत् परमेशानि दुर्गापाठमिदं महत्॥१२॥

अन्वयः—परमेशानि! इदं दुर्गापाठं महत्। महामायावरं लब्ध्वा सावर्णिः अष्टमः मनुः अभवत्।।१२।।

हे परमेश्वरि! दुर्गादेवी का यह माहात्म्य अत्यन्त श्रेयःप्रद है। भगवती का आशीर्वाद प्राप्त करके सूर्यपुत्र सावर्णि अष्टम मनु हो गये।।१२।।

हरिकर्णमलोद्भूतौ महावीर्यमदोद्धतौ।
उभयासुरौ संहन्त्री हरिणा परमेश्वरी॥१३॥

अन्वयः—परमेश्वरी हरिकर्णमलोद्भूतौ महावीर्यमदोद्धतौ उभयासुरौ संहन्त्री।।१२।।

परमेश्वरी देवी चण्डिका ने हरिकर्णमल से उत्पन्न महावीर्ययुक्त मद से उन्मत्त दोनों असुरों का संहार किया।।१३।।

जघान महिषं संख्ये पञ्चविंशतिकोटिभिः।
सेनाभिः परमेशानि त्वां नतोऽस्मि नतोऽस्मि त्वाम्॥१४॥

अन्वयः—च पञ्चविंशतिकोटिभिः सेनाभिः संख्ये महिषं जघान, परमेशानि त्वां नतः अस्मि नतः अस्मि त्वाम्।।१४।।

उन्होंने युद्ध में पच्चीस करोड़ सेना के साथ महिषासुर का वध किया। हे परमेश्वरि! मैं आपको नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ।।१४।।

नियुतैरष्टभिः संख्ये निशुम्भशुम्भनाशिनी।

विन्दूद्धवैर्द्वादशभिस्तथाक्षौहिणीभिः शुभे ।
जघान दितिजं संख्ये शतसप्ततिकोटिभिः ॥१५॥

अन्वयः—शुभे संख्ये नियुतैः अष्टभिः विन्दु-उद्भवैः द्वादशभिः अक्षौहिणीभिः तथा शतसप्ततिकोटिभिः दितिजं निशुम्भशुम्भनाशिनी जघान।।१५।।

हे कल्याणि! अष्टनियुत संख्यक सेना, रक्तविन्दु से उत्पन्न द्वादश अक्षौहिणी सेना तथा शतसप्तति कोटि सेना के साथ उन्होंने शुम्भ-निशुम्भ का भी वध किया।।१५।।

विष्णुप्रीता व्यासरता गणमाता सरस्वती ।
पर्वस्तुताष्टमीरता षट्प्रणामस्वरूपिणी ॥१६॥
नारायणश्लोकरूपा चण्डिकाह्लादरूपिणी ।
तत्कुक्षीप्रभवा देवी तद्गुह्यपरिवादिनी ॥१७।
तद्विकारा तदाधारा शतसप्तपरायणा ।
मुक्तिरूपा नियोगाख्या न्यासरूपाधिदेवता ॥१८॥
त्रिधा मूर्त्तिः शक्तिसारा त्रिचरित्रार्गलाधुना ।
कीलकासूक्तसम्भवा कवचाह्लादिनी महा ॥१९॥
उल्लासिनी षड्गुणाख्या त्रिदशाध्यायरूपिणी ।
माहात्म्यवाचिनी बाला सुरथराज्यसाधिका ॥२०॥

अन्वयः—देवी रुद्रचण्डी विष्णुप्रीता व्यासरता गणमाता पर्वतस्था अष्टमीरता षट्प्रणामस्वरूपिणी नारायणश्लोकरूपा चण्डिका आह्लादरूपिणी तत्कुक्षीप्रभवा तद्गुह्यपरिवादिनी तद्विकारा तद् आधारा शतसप्तपरायणा मुक्तिरूपा नियोगाख्या न्यासरूपाधिदेवता त्रिधा मूर्त्ति शक्तिसारा त्रिचरित्रगला अधुना कीलका सूक्तसम्भवा कवचाह्लादिनी महा उल्लासिनी षड्गुणाख्या त्रिदशाध्यायरूपिणी माहात्म्यवाचिनी बाला सुरथराज्यसाधिका।।१६-२०।।

देवी रुद्रचण्डिका विष्णुप्रिया, नारायणी तथा न्यासशक्तियुता हैं। वे गणमाता हैं, वाग्देवी, पर्वस्तुता (पर्वतों से स्तुता), अष्टमीरता (अष्टमी तिथि-सम्भूता) तथा षट्प्रणामरूपा हैं। वे ही नारायणशक्तिरूपा हैं। ने ही आत्मशक्तिरूपा हैं तथा कुक्षि से उत्पन्न हैं। वे महादेवी हैं, अतिगूढ़ परिवादिनी हैं। वे ही देवी चण्डिका की विकार-रूपा हैं। वे सर्वाधारा, शतसप्तस्वरूपा, मुक्तिदानरूपा, सर्वकर्त्तृत्वहेतु नियोगरूपा, न्यासरूपाधिदेवता, त्रिशक्तिमूर्त्तिधारिणी, त्रिचरित्रार्गला, कीलक तथा सूक्तसंभवा हैं। वे महाकवच से आह्लाद प्राप्त करने वाली, शक्तिरूपा, उल्लासिनी, षड्गुणरूपिणी,

देवशक्तिस्वरूपा, स्वमाहात्म्यकथयित्री एवं त्रिपुरसुन्दरी हैं। वे ही महाराज सुरथ को राज्य देने वाली हैं।।१६-२०।।

पुनश्चासौ शारदीये शारदीयामिषे रमे।
अरण्ये रघुनाथोऽपि महापूजां करिष्यति ॥२१॥

अन्वयः—रमे शारदीये इषे अरण्ये असौ रघुनाथ: अपि पुन: च शारदीयां महापूजां करिष्यति।।२१।।

हे महामाये! रामचन्द्र ने भी शारदीय आश्विन मास में पुन: इसकी शारदीया महापूजा की थी।।२१।।

कात्यायनि बुद्धिरूपे अपवर्गप्रदायिनि।
निमेषादिस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२२॥

अन्वयः—त्वं कात्यायनि बुद्धिरूपे अपवर्गप्रदायिनि निमेषादिस्वरूपेण नारायणि ते नम: अस्तु।।२२।।

हे देवि! आप ही कात्यायनी-स्वरूपा हैं एवं समस्त जनों की बुद्धिरूपा भी आप ही हैं। सभी को मुक्ति देने वाली तथा निमेषादि कालरूपिणी भी आप ही हैं। हे नारायणि! आपको प्रणाम है।।२२।।

शरण्ये नायिके घोरे शक्तिसिंहसमन्विते।
रुद्रे रौरवरुद्धे च नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२३॥

अन्वयः—त्वं शरण्ये नायिके घोरे शक्तिसिंहसमन्विते रुद्रे रौरवरुद्धे च नारायणि ते नम: अस्तु।।२३।।

हे देवी चण्डिके! आप ही एकमात्र शरण हैं। आप ही नायिका (चित् शक्ति), भयंकरी, शक्तिरूपा, सिंहयुता, रुद्राणी तथा रौरव नरक से त्राण दिलाने वाली हैं। हे नारायणि! आपको नमस्कार है।।२३।।

स्त्रीसमस्ते सर्वविद्ये सर्वभूताशयस्थिते।
कात्यायनि विप्रतापे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२४॥

अन्वयः—स्त्रीसमस्ते सर्वविद्ये सर्वभूताशयस्थिते कात्यायनि विप्रतापे नारायणि ते नम: अस्तु।।२४।।

हे महादेवि! आप समस्त नारीशक्ति के स्वरूप हैं। आप ही काली आदि महाविद्या हैं, समस्त भूतों के आश्रय हैं, देवी कात्यायिनी हैं तथा प्रतापदायिनी हैं। हे नारायणि! आपको नमस्कार है।।२४।।

चिक्षुरश्चामरोदग्रबिडालोग्रास्यवास्कलाः ।
तथोग्रवीर्यताम्राख्यासुरदुर्द्धरदुर्म्मुखाः ॥२५॥
महाहनूद्धताद्याश्च नाशिता चण्डिके त्वया ।
तस्मात्सर्वाणि सर्वेशि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२६॥

अन्वयः—चण्डिके त्वया चिक्षुर-चामर-उदग्र-विड़ाल-उग्रास्य-वास्कला तथा च उग्रवीर्य-ताम्राख्य-असुर-दुर्द्धर-दुर्मुखाः, महाहनु-उद्धताद्याः नाशिताः। तस्मात् सर्वाणि, सर्वेशी, नारायणी ते नमः।।२५-२६।।

हे महादेवी चण्डिके! आपने ही चिक्षुर, चामर, उदग्र, बिड़ाल, उग्रास्य, वास्कल प्रभृति असुर सेनानियों के समान ही उग्रवीर्य, ताम्र, दुर्द्धर, दुर्मुख-प्रभृति महान् शक्तिशाली तथा उद्धत असुरों का भी वध किया है। हे सर्वाणी सर्वेशी, नारायणि! आपको नमस्कार है।।२५-२६।।

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥२७॥

अन्वयः—त्वं हि जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी दुर्गा शिवा क्षमा धात्री, स्वाहा स्वधा ते नमः अस्तु।।२७।।

हे देवि! आप ही जयन्ती, मंगला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, शिवा, क्षमा, जगद्धात्री, देवपोषिणी तथा पितृतोषिणी हो। आपको नमस्कार है।।२७।।

शिवे दुर्गे महामाये भीमे भयविनाशिनि ।
चण्डिके चण्डदैत्यघ्नि सुराध्यक्षे परे शिवे ॥२८॥
नारायणि नारसिंहि वाराहि वरदे वरे ।
शरण्ये सर्वदे देवि दुर्गे दुर्गविनाशिनि ॥२९॥
भवानि परमाराध्ये कौमारि निगमावहे ।
नित्यस्मरे निधे दौर्गे सर्वाशुभविनाशिनि ॥३०॥

अन्वयः—हे देवि! त्वं शिवे, दुर्गे, महामाये, भीमे, भयविनाशिनि, चण्डिके, चण्डदैत्यघ्नि, नारायणि, नारसिंहि, वाराहि, वरदे, वरे, शरण्ये, सर्वदे, देवि, दुर्गे, दुर्गविनाशिनि, भवानी, परमाराध्ये, कौमारि, निगमावहे, नित्यस्मरे, निधे, दौर्गे, सर्वाशुभविनाशिनि असि।।२८-३०।।

हे देवि! आप ही शिवा, दुर्गा, महामाया, भयंकरी, सर्वभयनाशिनी, चण्डिका, चण्डासुरघातिनी, सुराध्यक्षा, श्रेष्ठा, कल्याणी, नारायणशक्तिरूपा, नारसिंही, वाराही,

वरदा, वरा, शरण्ययोग्या, चतुर्वर्गफलप्रदा, महेश्वरी, दुर्ज्ञेया, दुःखनाशिनी, भवानी, परमाराध्या, कौमारी, निगमावहा, सर्वदा स्मरणीया, षडैश्वर्यमयी, दुरधिगम्या तथा समस्त अकल्याण-नाशिनी हो।।२८-३०।।

कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मीति भाग्यवान्।
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं प्रसीद परमेश्वरि ।।३१।।

अन्वयः—अहं भाग्यवान् अहं कृतार्थः अस्मि, अहं कृतार्थः अस्मि। तुभ्यं नमः, तुभ्यं नमः, हे परमेश्वरि! प्रसीद।।३१।।

मैं भाग्यवान हूँ। मैं कृतार्थ हूँ। मैं धन्य हूँ। आपको नमस्कार है। आपको नमस्कार है। हे परमेश्वरि! मुझपर प्रसन्न हो जाइये।।३१।।

भवानीसन्निधौ यस्तु चण्डीमेतामुदीरयेत्।
दरिद्रोऽपि धनी भूत्वा शिवलोकं ब्रजेत्किल ।।३२।।

अन्वयः—यः तु भवानीसन्निधौ एताम् उदीरयेत् सः दरिद्रः अपि किल धनी भूत्वा शिवलोकं ब्रजेत्।।३२।।

जो निश्चित रूप से भवानी के सन्निधान में रुद्रचण्डी का पाठ करते हैं, वे दरिद्र होने पर भी धनी हो जाते हैं और शिवलोक को प्राप्त करते हैं।।३२।।

शनिभौमदिने देवि यदि चेन्दुक्षयो भवेत्।
तदा देव मुनीन्द्राणां शरण्यः प्रपठन् भवेत्।।३३।।

अन्वयः—यदि शनि-भौमदिने च इन्दुक्षयः भवेत्, तदा देवमुनीन्द्राणां शरण्यः प्रपठन् भवेत्।।३३।।

यदि अमावस्या तिथि शनि अथवा मंगलवार को पड़े तब देवता तथा मुनिगणों का शरण लेकर रुद्रचण्डी का पाठ अवश्य करना चाहिये।।३३।।

भौमवारे कृष्णपक्षे यदि स्यादष्टमी तिथिः।
बिल्वपत्रसहस्रैश्च सम्पूज्य तत्र पार्वतीम्।।३४।।
बलिं दत्त्वा विधानेन जपेदागमचण्डिकाम्।
यद् यदिष्टतमः लोके तत्तदाप्नोति निश्चितम्।।३५।।

अन्वयः—यदि कृष्णपक्षे भौमवारे अष्टमी तिथिः स्यात् तत्र आगमविधानेन विल्वपत्रसहस्रैः पार्वतीं सम्पूज्य च बलिं दत्त्वा चण्डिकाम् जपेत्। लोके यद् यद् इष्टतमः तत् तत् निश्चितम् आप्नोति।।३४-३५।।

यदि कृष्णपक्ष के मंगलवार को अष्टमी तिथि पडे तब आगमविधान से पार्वती की एक हजार बिल्वपत्र से पूजा करके बलि प्रदान करने के उपरान्त देवी के मन्त्र का जप करना चाहिये। इससे संसार में जिसकी जो कुछ भी आकांक्षा हो, उसे वह साधक निश्चित रूप से प्राप्त करता है।।३४-३५।।

कृष्णाष्टमीसमायुक्ता विशाखा वा शनौ भवेत्।
तत्र जप्त्वेदृशीं कृत्वा साधकः साधयेच्छिवाम्।।३६।।

अन्वयः—अथवा यदि शनौ कृष्णाष्टमी समायुक्ता विशाखानक्षत्रं भवेत् तत्र साधकः जप्त्वा शिवाम् ईदृशीं साधयेत्।।३६।।

अथवा यदि शनिवार को कृष्णाष्टमी से युक्त विशाखा नक्षत्र पड़े, तो उस दिन साधक को महादेवी का जप करके इसी प्रकार का साधन करना चाहिये।।३६।।

अपराजिताशतैः पुष्पैः सम्पूज्य परमेश्वरीम्।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां नवम्यां वापि पार्वतीम्।।३७।।
पूजयित्वाग्रमनसा दुर्गापाठमिमं जपन्।
लभते वाञ्छितं सर्वमिहलोके परत्र च।।३८।।

इत्यागमसन्दर्भे श्रीमद्रुद्रयामले रुद्रचण्डिकायां
शिवदुर्गासंवादे मध्यमावच्छेदः पटलः

अन्वयः—अष्टम्यां च नवम्यां वा चतुर्दश्यां अपि शतैः अपराजितापुष्पैः पार्वतीं पूजयित्वा अग्रमनसा इमं दुर्गापाठं जपन् इहलोके परत्र च सर्वं वाञ्छितं लभेत्।।३७-३८।।

जो अष्टमी, चतुर्दशी अथवा नवमी तिथि को एक सौ अपराजिता के पुष्पों द्वारा परमेश्वरी की पूजा करके एकाग्र मन से रुद्रचण्डी का पाठ करता है, वह इस लोक एवं परलोक में सभी प्रकार के वांछित फल को प्राप्त कर लेता है।।३७-३८।।

मध्यम अवच्छेद पटल समाप्त

उत्तमावच्छेदः

रुद्र उवाच

चण्डिकां हृदये न्यस्य स्मरणं यः करोत्यपि।
अनन्तफलमाप्नोति देवि चण्डीप्रसादतः ॥१॥

अन्वयः—हे देवि! हृदये चण्डिकां न्यस्य यः स्मरणं करोति अपि, सः चण्डी-प्रसादतः अनन्तफलं आप्नोति।।१।।

हे देवि! जो देवी चण्डिका को हृदय में स्थापित करके उनका स्मरण करता है, वह देवी की कृपा से अनन्त फल को प्राप्त करता है।।१।।

रविवारे यदा चण्डीं पठेदागमसम्मताम्।
नवावृत्तिफलं तस्य जायते नात्र संशयः ॥२॥

अन्वयः—यदा रविवारे आगमसम्मतां चण्डीं पठेत् तस्य नवावृत्तिफलं जायते अत्र संशयः न।।२।।

यदि रविवार को आगमसम्मत यह पाठ किया जाय तब एक ही पाठ से साधक को नव पाठ का फल निःसन्दिग्ध रूप से प्राप्त होता है।।२।।

सोमवारे यदा चण्डीं पठेद् यस्तु समाहितः।
सहस्रावृत्तिपाठस्य फलं जानीहि सुव्रते ॥३॥

अन्वयः—हे सुव्रते! सोमवारे यदा समाहितः सन् चण्डीं पठेत् तदा तु सहस्रावृत्तिपाठस्य फलं भवति, इति जानीहि।।३।।

हे सुव्रते! सोमवार को जो समाहित होकर रुद्रचण्डी का पाठ करते हैं, उन्हें सहस्र आवृत्ति पाठ का फल प्राप्त होता है।।३।।

कुजवारे जगद्धात्रि पठेदागमसम्मताम्।
शतावृत्तिफलं तस्य बुधे लक्षफलं भवेत् ॥४॥

अन्वयः—जगद्धात्रि, कुजवारे आगमसम्मताम् पठेत् तस्य शतावृत्तिफलं एवं बुधवारे लक्षफलं भवेत्।।४।।

हे जगद्धात्रि! मंगलवार को जो आगमसम्मत रुद्रचण्डी पाठ करता है, उसे एक सौ पाठ का फल मिलता है तथा बुधवार को पढ़ने से एक लाख पाठ का फल प्राप्त होता है।।४।।

गुरौ वारे महामाये लक्षयुग्मफलं ध्रुवम्।
शुक्रे देवि जगद्धात्रि चण्डीपाठेन शङ्करि ॥५॥
ज्ञेयं तुल्यं फलं दुर्गे पठेद् यदि समाहितः।
शनिवारे जगद्धात्रि कोट्यावृत्तिफलं ध्रुवम् ॥६॥

अन्वयः—हे महामाये, गुरुवारे लक्षयुग्मफलं भवेत्, हे जगद्धात्रि, हे शङ्करि! शुक्रे चण्डीपाठेन समाहित: पाठक: ज्ञेयं तुल्यं फलम्। हे जगद्धात्रि! शनिवारे रामाहित: पठनात् कोटि आवृत्तिफलं ध्रुवम्।।५-६।।

हे महामाये! बृहस्पतिवाको एक पाठ करने से दो लाख पाठ का फल निश्चित रूप से प्राप्त होता है। हे देवी जगद्धात्रि! हे शङ्करि! शुक्रवार के पाठ द्वारा परम ज्ञान के तुल्य फल मिलता है। और हे दुर्गे, हे जगद्धात्रि! शनिवार को समाहित होकर पाठ करने से करोड़ों आवृत्ति का फल निश्चित रूप से मिलता है।।५-६।।

अतएव जगद्धात्रि यश्च चण्डीं समभ्यसेत्।
स धन्यश्च कृतार्थश्च राजराजाधिपो भवेत् ॥७॥

अन्वयः—हे जगद्धात्रि! य: च चण्डीं समभ्यसेत् स: धन्य: च कृतार्थ: च राजराजाधिप: भवेत्।।७।।

हे जगद्धात्रि! अत: जो रुद्रचण्डी का सम्यक् रूप से अभ्यास करते हैं, वे धन्य, कृतार्थ तथा राजराजेश्वर हो जाते हैं।।७।।

आरोग्यं विजयं सौख्यं वस्त्ररत्नप्रवालकम्।
पठनात् श्रवणाच्चैव जायते नात्र संशयः ॥८॥

अन्वयः—पठनात् श्रवणात् च आरोग्यं विजयं सौख्यं एवं वस्त्ररत्नप्रवालकम् जायते अत्र न सन्देह:।।८।।

इसके पढ़ने तथा सुनने से आरोग्यता, विजय, सुख-प्राप्ति के साथ-साथ साधक को वस्त्र-रत्न-प्रवाल आदि निश्चित रूप से प्राप्त होते हैं।।८।।

धनं धान्यं प्रवालञ्च राजवस्तुविभूषितम्।
चण्डीश्रवणमात्रेण कुर्यात् सर्वं महेश्वरी ॥९॥

अन्वयः—चण्डीश्रवणमात्रेण महेश्वरी सर्व धनं धान्यं प्रवालं च राजवस्तु-विभूषितं कुर्यात्।।९।।

रुद्रचण्डी के माहात्म्य को सुनने-मात्र से ही महेश्वरी रुद्रचण्डी प्रसन्न होकर सुनने वाले को धन-धान्य-रत्नादि तथा राजवस्तु से भूषित कर देती हैं।।९।।

ॐ घोरचण्डी महाचण्डी चण्डमुण्डविखण्डिनी।
चण्डवक्त्रा महामाया महादेवविभूषिता ।।१०।।
रक्तदन्ता वरारोहा महिषासुरमर्दिनी।
तारिणी जननी दुर्गा चण्डिका चण्डविक्रमा ।।११।।
गुह्यकाली जगद्धात्री चण्डिका यामलोद्भवा।
श्मशानवासिनी देवी घोरचण्डी भयानका ।।१२।।
शिवा घोरा रुद्रचण्डी महेशगणभूषिता।
जाह्नवी परमा कृष्णा महात्रिपुरसुन्दरी ।।१३।।
विद्या श्री परमाविद्या चण्डी वैरिविमर्दिनी।
दुर्गा दुर्गा शिवा घोरा चण्डहन्त्री प्रचण्डिका ।।१४।।
महेशी बगला देवी भैरवी चण्डविक्रमा।
प्रमथैर्भूषिता कृष्णा चामुण्डा मुण्डमर्दिनी ।।१५।।
रणघण्टा चण्डघण्टा रणरामा रणप्रिया।
भवानी भद्रकाली च शिवा घोरा भयानका ।।१६।।

महादेवी रुद्रचण्डी घोरचण्डी हैं। वे ही महाचण्डी, चण्ड-मुण्डनाशिनी, भयंकर मुख वाली महामाया तथा महादेव से भूषिता हैं।

देवी रक्तदन्ता हैं। वे वरारोहा, महिषासुरघातिनी हैं। वे जगत्तारिणी, जगज्जननी, दुर्गा, रणचण्डिका तथा चण्डविक्रमा हैं।

वे ही कल्याणी, रुद्राणी, रुद्रचण्डी एवं महेश्वर के अनुचरों से भूषिता हैं। वे योगविद्या, श्री, परमेश्वरी, महाविद्या, चण्डी तथा शत्रुघातिनी हैं। वे ही दुर्गति-नाशिनी दुर्गा, कल्याणी, संहारिणी, चण्डहन्त्री तथा प्रचण्डिका भी हैं।

वे ही महेश्वरी, बगला, भैरवी तथा चण्डविक्रमा हैं। वे भूतगणों से भूषिता, कृष्णा, चामुण्डा तथा मुण्डासुर-घातिनी हैं।

वे रणघण्टा, चण्डघण्टारूपा, रणरामा एवं रणप्रिया हैं। वे ही भवानी, भद्रकाली, कल्याणी, शिवशक्ति, रुद्रशक्ति तथा भयानका हैं।।१०-१६।।

विष्णुप्रिया महामाया नन्दगोपगृहोद्भवा।
मङ्गला जननी चण्डी महाक्रुद्धा भयङ्करी ॥१७॥
विमला भैरवी निद्रा जातिर्बुद्धिः स्मृतिः क्षमा।
तृष्णा क्षुधा तथा छाया शक्तिमाया मनोहरा ॥१८॥
तस्यै देव्यै नमस्तस्यै सर्वरूपेण संस्थिता।
प्राणप्रिया जातिमाया निद्रारूपा महेश्वरी ॥१९॥
या देवी सर्वभूतेषु सर्वरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२०॥

वे ही विष्णुप्रिया शक्ति एवं नन्दगोप-गृहसम्भवा महामाया योगमाया हैं। वे कल्याणकारिणी, त्रिभुवन्माता तथा महाक्रुद्धा भयंकरी देवी चण्डी हैं।

वे ही हैं—विमला बुद्धि, भैरवी, निद्राशक्ति, जाति, बुद्धि, स्मृति, क्षमा शक्ति। वे ही हैं—तृष्णा-क्षुधा-छाया-माया शक्ति एवं हरमनोरमा महाशक्ति।

ये ही रुद्रचण्डिका देवी प्राणप्रिया शक्ति, जातिशक्ति, मायाशक्ति तथा निद्राशक्ति हैं। वे ही महेश्वरी हैं तथा सर्वरूप से स्थिता है। इन रुद्रचण्डिका को नमस्कार है।

जो देवी सर्वप्राणियों में सर्वशक्तिरूपेण अवस्थिता हैं, उनको नमस्कार है, उनको नमस्कार है, उनको नमस्कार है।।१७-२०।।

एतां चण्डीं जगद्धात्रि ब्राह्मणस्तु सदा पठेत्।
नान्यस्तु पाठको देवि पठने ब्रह्महा भवेत् ॥२१॥
नारदः पाठकश्चैव कैलासे रत्नभूषिते।
वैकुण्ठे ब्रह्मलोके च देवराजपुरे शिवे ॥२२॥
यः शृणोति धरायाञ्च मुच्यते सर्वपातकैः।
ब्रह्महत्या च गोहत्या स्त्रीवधोद्भवपातकम् ॥२३॥
तत्सर्वं पातकं दुर्गे मातृगमनपातकम्।
श्वश्रूगमनपापञ्च कन्यागमनपातकम् ॥२४॥
सुतस्त्रीगमनञ्चैव यद् यत् पापं प्रजायते।
परदारकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥२५॥

अन्वयः—देवि जगद्धात्रि ब्राह्मणः तु एतां चण्डीं सदा पठेत्, अन्यः पाठकः न। अस्तु पठने ब्रह्महा भवेत्। शिवे नारद एव रत्नभूषिते कैलासे वैकुण्ठे ब्रह्मलोके च देवराजपुरे पाठकः अस्ति। यः धरायां शृणोति सः ब्रह्महत्या-गोहत्या-स्त्रीवधोद्भवपातकम्,

मातृगमनपातकम्, श्वश्रूगमनपातकम्, कन्यागमनपातकं सुतस्त्रीगमनं एवं च यद् यत् पापं प्रजायते, एवं परदारकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति।।२१-२५।।

हे देवी जगद्धात्रि! केवल ब्राह्मण को ही इस रुद्रचण्डी का पाठ करना चाहिये (शेष वर्ण वालों को केवल सुनना चाहिये)। यदि अन्य जाति वाले इसका पाठ करते हैं तो वे ब्रह्महत्यारूप पातक से ग्रस्त होते हैं।

हे महादेवी कल्याणि! रत्नभूषित कैलास, वैकुण्ठ, ब्रह्मलोक तथा इन्द्रलोक में केवल देवर्षि नारद ही एकमात्र इसके पाठक हैं।

जो पृथ्वी पर इस रुद्रचण्डी पाठ को सुनता है, वह ब्रह्महत्या, गोहत्या, स्त्रीहत्या, मातृगमन, सास के साथ गमन, कन्या के साथ गमन, पुत्रवधू के साथ गमन, परस्त्री के साथ गमन-जनित समस्त पापों से तत्क्षण मुक्त हो जाता है।।२१-२५।।

जन्मजन्मान्तरात् पापात् गुरुहत्यादिपातकात्।
मुच्यते मुच्यते देवि गुरुपत्नीषु सङ्गमात्॥२६॥
मनसा वचसा पापं यत् पापं ब्रह्महिंसने।
मिथ्यायाञ्चैव यत्पापं तत्पापं नश्यति क्षणात्॥२७॥

अन्वयः—जन्मजन्मान्तरात् पापात् गुरुहत्यादिपातकात् गुरुपत्नीसङ्गमात् मनसा वचसा पापं ब्रह्महिंसने यत् पापं एवं मिथ्यायां यत् पापं हे देवि! तत् पापं क्षणात् नश्यति।।२६-२७।।

हे देवि! जन्म-जन्मान्तर में हुये पाप, गुरुहत्या-जनित पाप, गुरुपत्नीगमनरूप पाप, मन एवं वाणी द्वारा किये गये पाप, ब्राह्मणहिंसा-जनित पाप, मिथ्या आचरण-जनित पाप—ये सभी इस रुद्रचण्डि के माहात्म्य-पाठश्रवण से क्षणमात्र में ही समाप्त हो जाते हैं।।२६-२७।।

श्रवणं पठनञ्चैव यः करोति धरातले।
स धन्यश्च कृतार्थश्च राजराजाधिपो भवेत्॥२८॥

अन्वयः—धरातले यः श्रवणं पठनं च करोति, सः धन्यः, अपि च कृतार्थः; स राजराजाधिपः भवेत्।।२८।।

इस धरातल पर जो कोई रुद्रचण्डी-माहात्म्य का पाठ करता है या सुनता है, वह धन्य एवं कृतार्थ होकर राजराजेश्वर हो जाता है।।२८।।

यः करिष्यत्यवज्ञां रुद्रयामलचण्डिकाम्।
पापैरेतैः समायुक्तो रौरवं नरकं ब्रजेत्॥२९॥

अन्वयः—यः रुद्रयामलचण्डिकाम् अवज्ञां करिष्यति, सः एतैः पापैः समायुक्तः रौरवं नरकं व्रजेत्।।२९।।

जो रुद्रयामलोक्त चण्डिका की अवज्ञा करता है, वह समस्त पापों से युक्त होकर रौरव नरक में जाता है।।२९।।

अश्रद्धां ये च कुर्वन्ति ते च पातकिनो नराः।
रौरवं रक्तकुण्डञ्च कृमिकुण्डं मलस्य वै।
ततः पितृगणैः सार्द्धं विष्ठायां जायते कृमिः।।३०।।

अन्वयः—च ये अश्रद्धां कुर्वन्ति ते पातकिनः नराः च रौरवं रक्तकुण्डं च कृमिकुण्डं मलस्य वै। ततः विष्ठायां पितृगणैः सार्द्धं कृमिः जायते।।३०।।

जो इसके प्रति अश्रद्धा करते हैं, वे ही पापी लोग हैं। वे रौरव नरक कुण्ड के रक्तकुण्ड में तथा कृमिकुण्ड के मल में पितृगणों के साथ कृमि के रूप में जन्म ग्रहण करते हैं।।३०।।

शृणु देवि महाभागे चण्डीपाठं शृणोत्यपि।
गयायाञ्चैव यत् पुण्यं काश्यां विश्वेश्वराग्रतः।।३१।।
प्रयागे मुण्डने चैव हरिद्वारे हरेर्गृहे।
तुल्यपुण्यं भवेद्देवि सत्यं दुर्गे शिवे रमे।।३२।।
त्रिगयायां त्रिकाश्यां वै यच्च पुण्यं समुत्थितम्।
तच्च पुण्यं तच्च पुण्यं तच्च पुण्यं न संशयः।।३३।।

अन्वयः—देवि महाभागे यः चण्डीपाठं अपि शृणोति गयायां एव च काश्यां विश्वेश्वर-अग्रतः यत् पुण्यं, प्रयागे मुण्डने, हरिद्वारे हरेः गृहे तुल्यपुण्यं भवेत् दुर्गे, शिवे, रमे, सत्यं त्रिगयायां त्रिकाश्यां यत् च पुण्यं, तत् च पुण्यं भवति; अत्र न संशयः।।३१-३३।।

हे महाभागे रुद्रचण्डिके! सुनो, जो इस चण्डीपाठ का श्रवण भी कर लेते हैं, उन्हें गयाश्राद्ध, काशी में विश्वनाथ-दर्शन, प्रयाग में मस्तक-मुण्डन, हरिद्वार में हरि के आलय के दर्शन से जो पुण्य प्राप्त होता है, वह इस पाठ से ही मिल जाता है। हे देवी दुर्गे! शिवे! रमे! यह सत्य है कि तीन बार गयाश्राद्ध से एवं तीन बार काशी में विश्वनाथ के दर्शन से साधक को जो पुण्य मिलता है, वह पुण्य इस चण्डीपाठ के श्रवणमात्र से निःसन्दिग्ध रूप से प्राप्त हो जाता है।।३१-३३।।

भवानी च भवानी च भवानी तूच्यते बुधैः।
भकारश्च भकारश्च भकारः केवलः शिवः।।३४।।

वाणी चैव जगद्धात्री वरारोहे भकारकः ।
प्रेतवद्देवि विश्वेशि तकारः प्रेतवत्सलः ।।३५।।

अन्वयः—वुधैः भवानी च भवानी च भवानी च इति तु उच्यते। भकारः च भकारः च भकारः केवलः शिवः। हे देवि, विश्वेशि, वरारोहे, वाणी एव जगद्धात्री भकारकः। हे देवि, प्रेतवत् तकारः प्रेतवत्सलः।।३४-३५।।

ज्ञानीगण केवल भवानी-भवानी-भवानी का उच्चारण करते हैं। उसमें भकार है केवल शिव। हे वरारोहे, हे चण्डि! वाणी एवं जगद्धात्री भकार है। हे देवि! हे विश्वेश्वरि! तकार प्रेतवत्सल है।।३४-३५।।

आरोग्यञ्च जयं दुःखनाशनं सुखवर्द्धनम् ।
पुत्रं जरारोग्यं कुष्ठं गलितनाशनम् ।।३६।।
अर्द्धाङ्गरोगान्मुच्येत दद्रुरोगाच्च पार्वति ।
सत्यं सत्यं जगद्धात्रि महामाये शिवे शिव ।।३७।।

अन्वयः—पार्वति आरोग्यं च जयं दुःखनाशनं सुखवर्द्धनम् जरा-आरोग्यं गलित-कुष्ठनाशनं भवति। हे जगद्धात्रि, महामाये, हे शिवे कल्याणि सत्यं सत्यं च दद्रुरोगात् नरः मुच्यते।।३६-३७।।

रुद्रचण्डी के पाठ को सुनने वाला आरोग्य, जय, सर्वदुःखनाश, सर्वसुखवृद्धि, पुत्रलाभ एवं जरा से आरोग्यलाभ प्राप्त करता है तथा इससे गलित कुष्ठ आदि का भी नाश होता है। हे पार्वति! हे जगद्धात्रि! हे महामाये! हे शिवानि! मैं सत्य कहता हूँ कि इस रुद्रचण्डी सुनने वाला मानव अर्द्धाङ्ग रोग तथा दद्रु रोग से मुक्त हो जाता है।।३६-३७।।

चण्डे चण्डे महाघोरे चण्डिके व्याधिनाशिनि ।
मन्दे दिने महेशानि विशेषफलदायिनी ।
सर्वदुःखात्प्रमुच्येत भक्त्या चण्डीं शृणोति यः ।।३८।।

अन्वयः—हे चण्डे, हे महाघोरे, हे चण्डिके, हे व्याधिनाशिनि! मन्दे दिने विशेषफलदायिनि! भक्त्या यः चण्डीं शृणोति सः सर्वदुःखात् प्रमुच्येत।।३८।।

हे चण्डे, महाघोरे, हे चण्डिके, व्याधिनाशिनि, हे महेश्वरि! विशेष फलदायी रुद्रचण्डी को शनिवार को भक्तिपूर्वक पढ़ने वाला साधक सभी प्रकार के दुखों से मुक्त हो जाता है।।३८।।

ब्राह्मणो हितकारी च पठेन्नियतमानसः ।

मङ्गलं मङ्गलं ज्ञेयं मङ्गलं जयमङ्गलम् ।
भवेद्धि पुत्रपौत्रैश्च कन्यादासादिभिर्युतः ।।३९।।

अन्वयः—हितकारी ब्राह्मणः यदि नियतमानसः पठेत् मङ्गलं मङ्गलं ज्ञेयं च जयमङ्गलम्। सः पुत्रपौत्रः च कन्यादासादिभिः युतः।।३९।।

नियत संयतमना ब्राह्मण पाठक को अवश्य ही सभी प्रकार का मंगल तथा जय प्राप्त होता है। वे देवी की कृपा से पुत्र-पौत्र-कन्या-दासादि से युक्त हो जाते हैं।।३९।।

तत्त्वज्ञानञ्च निधने काले निर्वाणमाप्नुयात् ।
महादानोद्भवं पुण्यं तुल्यं हिरण्यके यथा ।।४०।।
चण्डीस्मरणमात्रेण पठनात् ब्राह्मणोऽपि सः ।
निर्वाणमेति देवेशि महास्वस्त्ययनं हि तत् ।।४१।।

अन्वयः—हे महादेवि! निधने काले तत्त्वज्ञानं च निर्वाणं आप्नुयात्। यथा हिरण्यकादि दाने महादानोद्भवं पुण्यं तथा चण्डीस्मरणमात्रेण सः ब्राह्मणः अपि पठनात् निर्वाणम् एति। हे देवेशि, महास्वस्त्ययनं हि तत्।।४०-४१।।

हे महादेवि! चण्डी का पाठ करने वाला अपने प्रयाण काल में तत्त्वज्ञान तथा मुक्ति प्राप्त करता है। जैसे रुद्रचण्डी का स्मरण करने-मात्र से स्वर्णादि महादानोद्भव पुण्य प्राप्त हो जाता है, वैसे ही रुद्रचण्डी के पढ़ने-मात्र से पाठक ब्राह्मण मुक्ति प्राप्त कर लेता है। हे महादेवि! रुद्रचण्डी पाठ महास्वस्त्ययन के समान है।।४०-४१।।

सर्वत्र विजयी जन्तुः श्रवणात् ग्रहदोषतः ।
मुच्यते च जगद्धात्रि राजराजाधिपो भवेत् ।।४२।।

अन्वयः—हे जगद्धात्रि श्रवणात् जन्तुः सर्वत्र विजयी च ग्रहदोषतः मुच्यते, राजराजाधिपः भवेत् ।।४२।।

हे जगद्धात्रि! रुद्रचण्डीपाठ को सुनने से जीव सर्वत्र विजयी होता है। वह ग्रहदोष से मुक्त होता है तथा राजराजेश्वर हो जाता है।।४२।।

महाचण्डी शिवा घोरा भयानका वरप्रदा ।
काञ्चनी कमला विद्या महारोगविमर्दिनी ।।४३।।
शुभचण्डी घोरचण्डी चण्डी त्रैलोक्यदुर्लभा ।
देवानां दुर्लभं चण्डी रुद्रयामलसम्मता ।।४४।।

रुद्रचण्डी महाचण्डी ही कल्याणी, रुद्राणी, भयंकरी तथा शुभाशीष-दायिनी है। वे ही काञ्चनवर्णी, कमला, महाविद्या तथा महारोग-विनाशिनी हैं। देवी रुद्रचण्डी ही

कल्याणचण्डिका एवं रुद्रचण्डिका हैं। वे देवताओं को भी दुर्लभ हैं। वे देवदुर्लभा रुद्रयामल-सम्मता देवी चण्डिका हैं।।४३-४४।।

अप्रकाशा महादेवी प्रिया रावणमर्दिनी।
मत्स्यप्रिया मांसरता मत्स्यमांसबलिप्रिया।।४५।।
मधुमत्ता महानृत्या भूतप्रमथसङ्गता।
मध्यभागा महारामा धान्यदा धनदायिनी।।४६।।
वस्तुदा मणिराज्यादिप्रजाविषयवर्द्धिका।
मुक्तिदा सर्वदा चण्डी महाविपदि रक्षिका।।४७।।

यह रुद्रचण्डी सर्वत्र अप्रकाशा हैं। ये महादेवी, प्रियंकरी एवं रावण-ध्वंसकारिणी हैं। देवी रुद्रचण्डी मत्स्यप्रिया, मांसप्रिया तथा मत्स्यबलिप्रिया हैं। वे मधुपानमत्ता एवं भूत-प्रमथादि के साथ महानृत्य-परायणा हैं। देवी चण्डिका मध्यभागा महामनोरमा है। वे जीवों को अन्न देने वाली तथा धन-सम्पत्ति प्रदान करने वाली हैं। वे मणि-राज्यादि वस्तु दान करने वाली तथा प्रजा के अनुराग को बढ़ाने वाली हैं। देवी चण्डी सर्वदा महाविपत्ति से रक्षा करने वाली तथा मुक्ति प्रदान करने वाली हैं।।४५-४७।।

इमाञ्च चण्डीं पठति मनुष्यः,
शृणोति भक्त्या परमं शिवस्य।
चण्डीं धरण्यामतिपुण्ययुक्तां,
भक्त्यावगच्छेद् वरमन्दिरं शुभम्।।४८।।

अन्वयः—धरण्याम् अतिपुण्ययुक्तां इमां चण्डीं यः मनुष्यः पठति भक्त्या शृणोति, सः मनुष्यः शिवस्य परमं मन्दिरं भक्त्या अवगच्छेत्।।४८।।

पृथ्वी पर अतिपुण्यमयी इस रुद्रचण्डी का जो पाठ करता है अथवा भक्ति के साथ श्रवण करता है, वह मानव महाकल्याणकारी परम शिवलोक में भक्ति के साथ अवस्थान करता है।।४८।।

यो यन्मनोरथं दुर्गे करोति धरणीतले।
रुद्रचण्डीप्रसादेन किं न सिध्यति तस्य वै।।४९।।

अन्वयः—दुर्गे धरणीतले यः यत् मनोरथं करोति रुद्रचण्डीप्रसादेन तस्य किं वै न सिध्यति।।४९।।

हे दुर्गे! इस पृथ्वी पर वह जो-जो मनोवाञ्छा करता है, देवी रुद्रचण्डी की कृपा से उसे क्या नहीं मिल जाता?।।४९।।

रुद्रध्येया रुद्ररूपा रुद्राणी रुद्रवल्लभा ।
रुद्रभक्ता रुद्रपूता रुद्रभूषासमन्विता ॥५०॥
शिवचण्डी महाचण्डी शिवप्रीतिगणान्विता ।
भैरवी परमा विद्या महाविद्या विनोदिनी ॥५१॥
सुन्दरी परमा पूज्या महात्रिपुरसुन्दरी ।
गुह्यकाली भद्रकाली महाकाली विमर्दिनी ॥५२॥
कृष्णा कृष्णस्वरूपा सा जनसम्मोहकारिणी ।
अतितन्द्रा महालज्जा सर्वमङ्गलदायिका ॥५३॥
घोरतन्द्रा भीमरूपा भीमादेवी मनोहरा ।
व्यालव्यालगणासिद्धिदायिका सर्वदा शिवा ॥५४॥
स्मृतिरूपा कीर्त्तिरूपा बुद्धिरूपा मनोहरा ।
विष्णुप्रिया शक्रपूज्या योगीन्द्रैरपि सेविता ॥५५॥
महाभयानका देवी भवदुःखविनाशिनी ।
चण्डिका शक्तिहस्ता च कौमारी सर्वकामदा ॥५६॥
वाराही च वराहस्य इन्द्राणी शक्रपूजिता ।
माहेश्वरी महेशस्य महेशगणभूषिता ॥५७॥
चामुण्डा नारसिंही च नृसिंही शत्रुनाशिनी ।
सर्वशत्रुप्रशमनी सर्वारोग्यप्रदायिनि ॥५८॥

वे ही महात्रिपुरसुन्दरी हैं। वे ही गुह्यकाली, भद्रकाली, महाकाली तथा सर्वशत्रुदमनी हैं। वे ही कृष्णा एवं कृष्णस्वरूपा हैं। जनसम्मोहनकारिणी वे देवी रुद्रचण्डी ही अतितन्द्रा एवं महालज्जारूपा हैं। वे ही सर्वमङ्गलप्रदानकारिणी हैं। वे घोरतन्द्रा, भीमरूपा, भीमा तथा मनोहरा हैं। वे व्यालगणासिद्धिप्रदा हैं। वे सर्वदा कल्याणी हैं। वे स्मृतिरूपा, कीर्त्तिरूपा, बुद्धिरूपा एवं मनोहरा हैं। वे ही विष्णुप्रिया शक्ति, देवेन्द्रपूज्या तथा योगीगण सेविता हैं। वे ही महाभयानका, महादेवी एवं संसार के दुःख का नाश करने वाली हैं। वे ही चण्डिका, शक्तिहस्ता, कुमारी शक्ति तथा समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली हैं। वे ही वराह अवतार की वाराही शक्ति हैं तथा इन्द्र-पूजिता इन्द्रशक्ति इन्द्राणी भी हैं। वे ही महेश्वरगण-भूषिता माहेश्वरी शक्ति हैं। वे देवी ही चामुण्डा, नारसिंही तथा शत्रुनाशिनी नृसिंही शक्ति हैं। देवी रुद्रचण्डी समस्त शत्रुओं का विनाश करने वाली एवं पूर्ण आरोग्य प्रदान करने वाली हैं।।५०-५८।।

नैव दुःखमयं किञ्चित् पाठाद्वा श्रवणाद् यतः ।
गुह्यमेकं प्रवक्ष्यामि नैव जानन्ति केचन ॥५९॥

अन्वयः—यतः पाठात् वा श्रवणात् किञ्चित् दुःखमयं न एवं भवति अतः एकं गुह्यं प्रवक्ष्यामि केचन न एव जानन्ति ।।५९।।

यद्यपि रुद्रचण्डी का पाठ करने अथवा श्रवण करने से किसी भी प्रकार का दुःख अथवा भय नहीं रहता; तथापि हे देवि! मैं एक गोपनीय उपाय की कथा कहता हूँ, जिसे अन्य कोई नहीं जानता।।५९।।

स्मृतिभ्रंशाद् वरारोहे त्वयैवापि न जायते।
इति सत्यं महेशानि सम्यं सत्यं वदाम्यहम् ।।६०।।

अन्वयः—हे वरारोहे स्मृतिभ्रंशात् त्वया एव अपि न जायते। हे महेशानि, इति सत्यं सत्यं सत्यं अहं वदामि।।६०।।

हे वरारोहे! स्मृतिभ्रंश के कारण वह तुम भी नहीं जानती। तब भी हे महादेवि! यह निश्चित है कि यह मैं तुमसे सत्य, सत्य कहता हूँ।।६०।।

नैव दुःखं नैव शोकं नैव रोगभयं तथा।
आरोग्यं मङ्गलं नित्यं करोति शुभमङ्गलम् ।।६१।।

अन्वयः—दुःखं न एव शोकं न एव रोगभयं न एव। तथा आरोग्यं मङ्गलं नित्यं शुभमङ्गलं करोति।।६१।।

महेशानि वरारोहे ब्रवीमि सत्यमुत्तमम्।
अभक्ताय न दातव्यं मम प्राणाधिकं शुभम् ।।६२।।

अन्वयः—महेशानि, वरारोहे सत्यम् ब्रवीमि मम प्राणाधिकं शुभम् अभक्ताय कदाचित् न दातव्यम्।।६२।।

हे महेश्वरि! हे वरारोहे! तुमसे यथार्थ उत्तम वक्तव्य कहता हूँ। मेरी प्राणाधिक प्रिय शुभ वस्तु रुद्रचण्डी का माहात्म्य कभी भी भक्तिहीन से नहीं कहना चाहिये।।६२।।

मम भक्ताय शान्ताय शिवविष्णुप्रियाय च।
दद्यात् कदाचिद्देवेशि सत्यं सत्यं महेश्वरि ।।६३।।

अन्वयः—हे देवेशि! हे महेश्वरि! मम भक्ताय शान्ताय च शिवविष्णुप्रियाय सत्यं सत्यं दद्यात्।।६३।।

हे देवदेवि! हे महेश्वरि! मेरे भक्त को, विशुद्ध को तथा शैव एवं वैष्णव को सत्य-सत्य ही देवी रुद्रचण्डी का माहात्म्य प्रदान करना चाहिये।।६३।।

अनन्तफलमाप्नोति शिवचण्डीप्रसादतः।

अश्वमेधवाजपेयराजसूयशतेन वै।
तुष्टाश्च पितरो देवास्तथा च सर्वदेवताः ॥६४॥

अन्वयः—शिवचण्डीप्रसादतः अनन्तफलं आप्नोति। चण्डिकाप्रसादतः वै अश्वमेध-वाजपेयराजसूयशतेन तुष्टाः पितरः च देवाः तथा सर्वदेवताः।।६४।।

सौ अश्वमेध, वाजपेय एवं राजसूय यज्ञ से क्रमशः पितृगण, देवगण तथा समस्त देवता तुष्ट होते हैं। लेकिन शिव तथा चण्डी की कृपा प्राप्त होने पर अनन्त फल की प्राप्ति होती है।।६४।।

दुर्गायां मृण्मयीज्ञानं रुद्रयामलपुस्तकम्।
मन्त्रमक्षरसंज्ञानं करोति हि नराधमः ॥६५॥

अन्वयः—नराधमः दुर्गायां मृण्मयीज्ञानं रुद्रयामलपुस्तकम् एव मन्त्रं अक्षरसंज्ञानं करोति हि।।६५।।

जो नराधम होते हैं, वे ही दुर्गामूर्त्ति को मृण्मयी मूर्त्ति तथा रुद्रयामल को मात्र पुस्तक समझते हैं, वे मन्त्र को अक्षरमात्र ही मानते हैं।।६५।।

अत एव महामाये किं वक्ष्ये तव सन्निधौ।
लम्बोदराधिकाश्चण्डी पठनाच्छ्रवणाद्यतः ॥६६॥

अन्वयः—हे महामाये तव सन्निधौ किं वक्ष्ये, यतः चण्डीपठनात् श्रवणात् लम्बोदराधिकाः।।६६।।

हे महामाये! तुमसे और क्या कहें? यद्यपि रुद्रचण्डी के पाठ एवं श्रवण से लम्बोदर से भी अधिक फल मिलता है।।६६।।

तत्त्वमसीति वाक्येन मुक्तिमाप्नोति दुर्लभाम्।
तथास्याः पठनाद्देवि संसृतिः स्यात् सुदुर्लभा ॥६७॥

अन्वयः—हे देवि! तत्त्वमसि इति वाक्येन दुर्लभां मुक्तिम् आप्नोति। तथा अस्याः पठनात् सुदुर्लभा संसृतिः स्यात्।।६७।।

हे देवि! 'तत्त्वमसि' इस वाक्य से दुर्लभ मुक्ति प्राप्त होती है; किन्तु रुद्रचण्डी के पाठ से सुदुर्लभ संसृति प्राप्त होती है।।६७।।

सत्यं सत्यं महेशानि पुनः सत्यं मयोदितम्।
कपिला शतदानस्य फलं यत् प्रतिवासरम् ॥६८॥

तत्फलं लभते नित्यं रुद्रचण्डीप्रसादतः ।
अन्यथा नैव सम्भाव्यं सत्यं सत्यं वदामि ते ।।६९।।

इति श्रीमदागमसन्दर्भे श्रीमद्रुद्रयामले रुद्रचण्डिकायां हरगौरीसंवादे फलरहस्यं नाम उत्तमावच्छेदः पटलः

अन्वयः—हे महेशानि, सत्यं सत्यं पुनः सत्यं मया उदितम्। प्रतिवासरम् कपिला शतदानस्य यत् फलं रुद्रचण्डीप्रसादतः नित्यं तत् फलं लभते। अस्याः अन्यथा न एव सम्भाव्यं, सत्यं सत्यं वदामि।।६८-६९।।

हे महादेवि! सत्य, सत्य; पुनः सत्य कहता हूँ कि प्रतिदिन सौ कपिला गोदान से जो फल प्राप्त होता है, वही फल रुद्रचण्डी की कृपा से प्राप्त हो जाता है। इसमें अन्यथा की सम्भावना है ही नहीं। हे देवि! यह तुमसे सत्य सत्य कहता हूँ।।६८-६९।।

उत्तम अवच्छेद पटल समाप्त

तुरीयावच्छेदः

रुद्र उवाच

पुरासीद्दिवि दुर्द्धर्षः प्रलम्बो नामतोऽसुरः।
इन्द्रं निर्जित्य शक्रत्वं नीतवान् निजतेजसा।
मया दत्तवरोन्मत्तः कालकङ्कालप्रोष्कलान् ॥१॥

अन्वयः—पुरा मयाः दत्तः वरोन्मत्तः दुर्द्धर्षः प्रलम्बनामतः असुरः शत्रुत्वं इन्द्रं निर्जित्य निजतेजसा कालकङ्कालप्रोष्कलान् दिवि नीतवान् ॥१॥

रुद्रदेव कहते हैं कि रुद्रदेव द्वारा प्रदत्त वर से अति दुरन्त प्रलम्व नामक असुर ने देवराज इन्द्र को अपने तेज से पराजित करके काल, कंकाल तथा प्रोष्कल नामक असुरों को स्वर्ग में ले गया॥१॥

सुकालं विकलं कौलं निष्कालं कालसञ्चरम्।
प्रतिकालं कार्यकालं हर्षकालं हलाहलम् ॥२॥
संकालं कालकुलकं कालहाढ्यं हटाहटम्।
हटत्कालं बृहत्कालं कालचक्रं कलाकलम् ॥३॥
महाकालं कालरूपं सैन्यैर्द्विकोटिसंज्ञकम्।
अमारयत् सुरप्रीत्यै विड़ौजाप्रमुखैः स्तुता।
दुन्दुभिर्वादयित्वा च घण्टाद्यैर्घोररावणैः ॥४॥

अन्वयः—विडौजाप्रमुखैः स्तुता देवी रुद्रचण्डिका सुरप्रीत्यै दुन्दुभिः वादयित्वा च घण्टाद्यैः घोररावणैः सुकालं, विकलं, कालसञ्चरं, प्रतिकालं, कार्यकालं, हर्षकालं, हलाहलम्, सङ्कालं, कालकुलकं, कालहाढ्यं, हटाहटम, हटत्कालं, बृहत्कालं, कालचक्रं, कलाकलम्, महाकालं, कालरूपं, सैन्यैर्द्विकोटिसंज्ञकम् अमारयत् ॥२-४॥

बिड़ौजा-प्रभृति द्वारा स्तुत होकर देवी रुद्रचण्डिका ने देवगण की प्रसन्नता के लिये स्वर्गीय युद्धवाद्य बजाकर तथा घण्टा आदि से अति उच्च भयंकर शब्द किया। सुकाल, विकल, काल, निष्काल, कालसञ्चर, प्रतिकाल, कार्यकाल, हर्षकाल, हलाहल, संकाल, कालकुलक, कालहाढ्य, हटाहट, हटत्काल, बृहत्काल, कालचक्र, कलाकल, महाकाल एवं कालरूप नामक दो करोड़ सेना का संहार किया॥२-४॥

बिड़ौजास्तद्भयात् शीघ्रं ब्रह्माद्यैरगमत्ततः।
कारणाख्यजलानां वै उपरिस्था परेश्वरी ॥५॥
यत्रास्ते ताभिः सखीभिर्नायिकादिभिरेव सा।
स्तुता बहुविधैः स्तोत्रैरपृच्छन्मृदुवाक्यतः।
प्रलम्बं नाशय शुभे नान्यथा मृत्युमेष्यति ॥६॥

अन्वयः—ततः विड़ौजा तद्भयात् ब्रह्माद्यैः शीघ्रं अगमत्, यत्र कारणाख्यजलानां उपरिस्था परमेश्वरी आस्ते, तत्र ताभिः सखीभिः नायिकादिभिः एव सा बहुविधैः स्तोत्रैः स्तुत्वा मृदुवाक्यतः अपृच्छत्। शुभे प्रलम्बं नाशय, नान्यथा मृत्युम् एष्यति।।५-६।।

तदनन्तर बिड़ौजादि भय से ब्रह्मादि प्रमुख देवगण के साथ वहाँ शीघ्रता से गये, जहाँ देवी परमेश्वरी कारण जल के ऊपर अवस्थिता थीं। वहाँ सखीगणों तथा नायिका-गणों द्वारा देवी बहुविध स्तुत हुईं। तदनन्तर देवताओं ने विनयपूर्वक कहा कि हे कल्याणि! आप प्रलम्ब का वध करिये; नहीं तो देवगण मारे जायेंगे।।५-६।।

इति स्तुत्वा शिवां देवाः कथितं मातुरग्रतः।
भव्या प्राह शिवे गच्छ प्रलम्बनाशनाय च ॥७॥

अन्वयः—शिवा इति स्तुत्वा देवाः मातुः अग्रतः कथितं च भव्या प्राह शिवे प्रलम्बनाशाय गच्छ।।७।।

महादेवी शिवशक्ति की यह स्तुति देवताओं ने जगज्जननी से कही। वहाँ भव्या ने कहा—हे शिवे! तुम प्रलम्बासुर के नाश के लिये जाओ।।७।।

आज्ञां लब्ध्वा च सा देवी गत्वामरपुरे वरे।
शतैश्च योगिनीसैन्यैर्युयुधे प्रहरद्वयम्।
महिषप्रतिमं तञ्च जघान परमेश्वरी ॥८॥

अन्वयः—आज्ञां लब्ध्वा सा देवी परमेश्वरी वरे अमरपुरे गत्वा प्रहरद्वयम् शतैः योगिनीसैन्यैः युयुधे च तं महिषप्रतिमं जघान।।८।।

देवताओं की आज्ञा से देवी परमेश्वरी श्रेष्ठ अमरपुर में शत योगिनीसेना लेकर गई और दो प्रहर तक युद्ध करके महिषासुर के समान (बली) प्रलम्बासुर का वध कर दिया।।८।।

ततस्ताभिः स्तुता तत्र चण्डिका विश्वरूपिणी।
वरारोहा भगवती स्वाश्रमा सुखिनी शुभा ॥९॥

मधुपा माधवी मात्रा मित्रा मित्रं यशस्विनी।
मनोभवा मधून्मत्ता महिषघ्नी सुमन्त्रिणी ॥१०॥

अन्वयः—ततः तत्र ताभिः चण्डिका इत्थम् स्तुता देवि चण्डिका! त्वं त्रिश्वरूपिणी, वरारोहे, भगवती, स्वाश्रमा, सुखिनी, शुभा, मधुपा, माधवी, मात्रा, मिता, मित्रं, यशस्विनी, मनोभवा, मधून्मत्ता, महिषघ्नी सुमन्त्रिणी।।९-१०।।

प्रलम्बासुर का वध हो जाने पर स्वर्गलोक में वे नायिकायें इस प्रकार से देवी की स्तुति करने लगीं—हे देवी चण्डिके! आप विश्वरूपा, वरारोहा, भगवती, आत्मशक्तिरूपा, सुखरूपा, कल्याणी, मधुपानरता, माधवशक्तिरूपा, मात्रा, मिता, प्रीतिशक्तिरूपा, यशस्विनी, मनोभवा, मधुपान से उन्मत्ता, महिषघातिनी तथा सुमन्त्रिणी हो।।९-१०।।

इमाञ्च चण्डिकां नित्यं यः पठेत् पाठयेन्नरः।
सर्वतीर्थावगाहस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥११॥

अन्वयः—यः नरः इमां चण्डिकां नित्यं पठेत् च पाठयेत् सः निश्चितं सर्वतीर्थ-अवगाहनस्य फलं आप्नोति।।११।।

जो मानव इस रुद्रचण्डी के माहात्म्य को नित्य पढ़ता है अथवा पाठ कराता है, वह समस्त तीर्थों में अवगाहन (स्नान) का फल अवश्य प्राप्त करता है।।११।।

यः पठेत् प्रयतो नित्यं रुद्रचण्डीमिमां सुधीः।
गात्रोत्थाने गुरोरग्रे गुहायां गवि धूमतः ॥१२॥
गोष्ठे गौड़े गोकुले वा गोविन्दाग्रे गयोपरि।
गङ्गायां गिरिजायज्ञे गिरीजाप्रतिपूजने।
ग्रहणे गोकोटिदाने यद्यत्तीर्थं महीतले ॥१३॥
तस्मात् कोटिगुणं पुण्यं जायते श्रूयते यदि।
चण्डिकां रुद्रवक्त्रारविन्दवाक्यविनिर्गताम् ॥१४॥

अन्वयः—यः सुधीः प्रयतः नित्यं गात्रोत्थाने गुरोः अग्रे गुहायां गवि धूमतः गोष्ठे गौड़े गोकुले वा गोविन्दाग्रे गयोपरि गङ्गायां गिरिजायज्ञे गिरिजाप्रतिपूजने ग्रहणे गोकोटिदाने महीतले तत्र तत्र पठेत् वा श्रूयते यदि, तस्मात् कोटिगुणं पुण्यं जायते। यतः रुद्रवक्त्रारविन्दवाक्यविनिर्गताम् चण्डिकाम् अभवत् ।।१२-१४।।

रुद्रचण्डि का माहात्म्य रुद्रदेव के मुखकमल से निकला है। तभी तो जो सुधी व्यक्ति एकाग्र होकर नित्य शय्यात्याग के समय, गुरु के सामने, गुहा में, गोधूमयुत स्थान में, गोष्ठ में, गोकुल में अथवा गोविन्द के सामने, गया में चरणपादुका पर,

गंगा के प्रवाह में, पार्वतीय यज्ञ में अथवा पार्वतीपूजन में, ग्रहण में, कोटि गोदानकाल में या पृथ्वी पर जो तीर्थ हैं वहाँ इसका पाठ करता है तो उसे करोड़ों गुणित फल प्राप्त होता है।।१२-१४।।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेतन्मयोदितम्।
रुद्रचण्डीसमं पुण्यं किञ्चिन्नास्ति क्षितिस्तले।।१५।।

अन्वयः—मया उदितं एतत् सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं। क्षितिः तले रुद्रचण्डीसमं पुण्यं किञ्चित् नास्ति।।१५।।

रुद्रदेव द्वारा कथित रुद्रचण्डी का माहात्म्य यथार्थतः सत्य है। मैं कहता हूँ सत्य ही यथार्थ है। धरातल में रुद्रचण्डी के माहात्म्य के समान पुण्यप्रद वस्तु अन्य कुछ भी नहीं हैं।।१५।।

नित्यं यस्तां स्तवैरेतैः स्तूयते च समाहितः।
बाधाजालञ्च तस्यां वा समस्ताचार एव हि।।१६।।

अन्वयः—समाहिताः यः तां एतैः स्तवैः नित्यं स्तूयते तस्यां समस्त आचारः बाधाजालं नश्यति।।१६।।

सावधान होकर जो साधक इन स्तोत्रों से नित्यप्रति देवी की स्तुति करता है, उसके समस्त आचरण पवित्र होते हैं एवं बाधायें समाप्त हो जाती है।।१६।।

मधुकैटमनैपात्यं महिषासुरसंहरम्।
पठन्ति पाठयन्त्येव वधं शुम्भनिशुम्भयोः।।१७।।
श्रोष्यन्ति नित्यं ये भक्त्या माहात्म्यं तव चण्डिके।
नवम्यां कृष्णपक्षे वा चतुर्दश्यां तथैव च।।१८।।
शुक्लाष्टम्यां पर्वतो वा भक्तश्चैवैकचेतसः।
न चैषां दुष्कृतं किञ्चिन्न दारिद्र्यं न चापदः।।१९।।
न च शत्रुभयं किञ्चिन्न चैवेष्टवियोजनम्।
दस्युतो राजतो नैव न शस्त्रानलयोरपि।
न जले नोपसर्गे च महामारीभयं न च।।२०।।

अन्वयः—हे चण्डिके! ये भक्ताः एकचेतसः कृष्णपक्षे नवम्यां वा चतुर्दश्यां तथा एव शुक्लाष्टम्यां पर्वतो मधुकैटमनैपात्यं महिषासुरसंहारञ्च शुम्भनिशुम्भयोः वधं च माहात्म्यं भक्त्या नित्यं पठन्ति पाठयन्ति एव वा श्रोष्यन्ति, एषां दुष्कृतं न, किञ्चित् दारिद्र्यं च न, आपदः च किञ्चित् शत्रुभयं च न, इष्टवियोजनं च न, दस्युतः राजतः च शस्त्रानलयोः अपि च जले उपसर्गे च महामारीभयं न एव च।।१७-२०।।

हे रुद्रचण्डिके! जो भक्त एकाग्र होकर कृष्णपक्षीय नवमी अथवा चतुर्दशी को तथा इसी प्रकार शुक्लपक्षीय अष्टमी को मधु-कैटभसंहार के वृत्तान्त, महिषासुरसंहार के वृत्तान्त तथा शुम्भ-निशुम्भ वधकथारूप देवी रुद्रचण्डी के माहात्म्य का भक्ति से नित्य पाठ करते हैं अथवा सुनते हैं, उन्हें कोई दुष्कृति, दरिद्रता, आपत्ति, शत्रुभय, प्रियवियोग, दस्यु अथवा राजा से या शस्त्र अथवा अग्नि से कोई भय नहीं होता। उन्हें जल से, किसी उपसर्ग से तथा किसी महामारी से भी कोई भय नहीं होता।।१७-२०।।

यत्रैतत् पठ्यते भक्त्या नित्यमायतने मम।
तत् स्थानं न विमोक्ष्यामि सान्निध्यं मम सर्वदा ।।२१।।
महास्वस्त्ययनं पुण्यं पापजालविनाशनम्।
चतुर्वर्गप्रदं सत्यं तथाक्षयदिवःप्रदम् ।।२२।।
वह्निकर्मणि पूजायां बलिदाने तथोत्सवे।
ममैतां चण्डिकां श्रुत्वा तत् सर्वमक्षयं लभेत् ।।२३।।
युद्धे वीरवरो भूयात् निर्भयो रिपुसङ्कुले।
कल्याणं लभते नित्यं लभते कुलवर्द्धनम् ।।२४।।

अन्वयः—मम यत्र आयतने नित्यम् भक्त्या एतत् पठ्यते तत् स्थानं न विमोक्ष्यामि, भक्तः सर्वदा मम सान्निध्यं वर्त्तते। चण्डिकादेवीमाहात्म्यं महास्वस्त्ययनं पुण्यं सत्यं पापजालविनाशनम् चतुर्वर्गप्रदं तथा अक्षयदिवःप्रदम्। मम एतां चण्डिकां वह्निकर्मणि पूजायां, बलिदाने तथा उत्सवे श्रुत्वा तत् सर्वं अक्षयं लभेत्। युद्धे वीरवरो भूयात् रिपुसंकुले निर्भयः भूयात् नित्यं कल्याणं लभते च कुलवर्द्धनं लभते।।२१-२४।।

मेरे मन्दिर में जो प्रतिदिन भक्तिपूर्वक देवी चण्डीमाहात्म्य का पाठ करता है, मैं उस स्थान का कभी परित्याग नहीं करती। मेरे भक्त भी सदा मेरे सान्निध्य में रहते हैं। रुद्रचण्डी का माहात्म्य पाठ अवश्य ही महास्वस्त्ययन एवं महापुण्य कर्म है तथा पापों का नाशक है और स्वर्गवासरूप फल को देने वाला है। होमादि कार्य, पूजा, बलिदान में तथा अन्य उत्सवों में मेरे इस माहात्म्य का श्रवण करने से इन सभी कार्यों का अक्षय फल प्राप्त होता है। इसके पाठफल से पाठक युद्धों में श्रेष्ठ वीर सिद्ध होता है, शत्रुओं में निर्भय हो जाता है। उसे सदा लाभ, कल्याण तथा वंशवृद्धि होती है।।२१-२४।।

शान्तिकर्मणि दुःस्वप्ने प्रपठेन्मित्रकर्मणि।
संघातभेदने चैव रक्षोभयविनाशने ।।२५।।
आरोग्यं शत्रुसंहारेऽरण्ये याने वनाग्नितः।
शून्ये सिंहादिजन्तूनां भये सर्वभयेऽपि च।
स्मरन्नेतत् परं गुह्यं सङ्कटान्मुच्यते नरः ।।२६।।

अन्वयः—शान्तिकर्मणि दुःस्वप्ने मित्रकर्मणि संघातभेदने च रक्षोभयविनाशने देवीमाहात्म्यं प्रपठेत्। शत्रुसंहारे अरण्ये याने वनाग्नितः शून्ये सिंहादिजन्तूनां भये अपि एतत् परं गुह्यं स्मरन् तर्हि नरः सङ्कटात् मुच्यते।।२५-२६।।

शान्तिकर्म, दुःस्वप्न-दर्शन, प्रिय कर्म, विपद-मीमांसा तथा राक्षसों के भय में देवी चण्डिका के माहात्म्य को अवश्य पढ़ना चाहिये। शत्रुनिधन, अरण्य, दान, दावानल, आकाश, सिंहादि के भय तथा सभी प्रकार के भय में इस परम गुप्त रुद्रचण्डी माहात्म्य का स्मरण करना चाहिये। इससे व्यक्ति समस्त संकटों से मुक्त हो जाता है।।२५-२६।।

एकधा दशधा चैव शतधा च सहस्रधा।
अयुतं लक्षं नियुतं कोट्यर्बुदमहार्बुदम्।।२७।।
पद्मञ्चापि महापद्मं खर्वञ्च लघुखर्वकम्।
हंसञ्चैव महाहंसं महाशङ्खञ्च धूलकम्।।२८।।
अक्षौहिणी महाधूलं महाक्षौहिणिका क्रमात्।
यथाशक्ति यथावृत्ति यावज्जीवं भवार्णवे।
तावद्वा जन्मनि दिनं कियत्कालं कलौ कुले।।२९।।
भवानीत्युच्चरन् जन्तुर्भवान्मुच्येत नान्यथा।
भवानीत्युच्चरन् व्याजान्न यानौ जायते जनः।।३०।।

अन्वयः—एकधा दशधा च एवं शतधा च सहस्रधा अयुतं लक्षं नियुतं कोटिं अर्बुदं भहार्बुदं च पद्मं अपि महापद्मं च खर्वं लघखर्वकं च एवं हंसं महाहंसं च महाशंखं धूलकं अक्षौहिणी महाधूलं च महाक्षौहिणिका एवं क्रमात् भवार्णवे यावत् जीवं तावत् जन्मनि वा कलौ कुले यथाशक्ति यथावृत्ति भवानी इति उच्चरन् जन्तुः भवात् मुच्येत नान्यथा। भवानी इति उच्चरन् व्याजात् जनः यानौ न जायते व्याजात्।।२७-३०।।

एक बार, दस बार, सौ बार, एक हजार बार, अयुत-लक्ष-नियुत-कोटि-अर्बुद-महार्बुद बार, पद्म-महापद्म-खर्व-लघुखर्व बार, हंस-महाहंस बार, धूलक-अक्षौहिणी-महाधूल-महाक्षौहिणी बार—इस क्रम से संसार में जब तक जीवन है, तब तक अथवा उतने जन्मों तक इस कलिकाल में यथाशक्ति यथावृत्ति 'भवानी' नाम का उच्चारण करने वाला संसार में सदा मुक्त हो जाता है। छल-कपट से भी 'भवानी' नाम का उच्चारण करने से जीव पुनः जन्म नहीं लेता।।२७-३०।।

अथानुक्रमणिकां वक्ष्ये शृणु देवि शुचिस्मिते।
न्यासं विधानं पूजाञ्च नत्वा सर्वमुदीरयेत्।।३१।।

इत्यागमसन्दर्भे रुद्रयामले पुष्पिकाकल्पे तूर्यखण्डे दुर्गाप्रीतिवचने
माहात्म्यं नाम रुद्रोक्ता रुद्रचण्डी समाप्ता

अन्वयः—अथ देवि शुचिस्मिते त्वं शृणु अनुक्रमणिकां वक्ष्ये न्यासं विधानं पूजां च नत्वा सर्वम् उदीरयेत् ।।३१।।

तदनन्तर हे शुचिस्मिते! मैं अनुक्रमणिका कहता हूँ, तुम सुनो। न्यासविधान, पूजा, प्रणाम करके सब कार्य करना चाहिये।।३१।।

तुरीयावच्छेद पटल समाप्त

रुद्रचण्डीपाठापराधक्षमापनस्तोत्रम्

यदक्षरं परिभ्रष्टं मात्राहीनञ्च यद्भवेत्।
पूर्णं भवतु तत्सर्वं त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥१॥

अन्वयः—यत् अक्षरं परिभ्रष्टं यत् च मात्राहीनं भवेत् महेश्वरि त्वत् प्रसादात् सर्वं पूर्णं भवतु।।१।।

हे महेश्वरि! इस रुद्रचण्डी पाठ में जो अक्षर पाठच्युत है तथा मात्राहीन है, वह सब आपकी कृपा से पूरा हो।।१।।

भ्रमणे पठितं यच्च श्लोकं श्लोकार्द्धमेव वा।
तन्मे सम्पूर्णतां यातु प्रसादात्तव चण्डिके ॥२॥

अन्वयः—भ्रमणे यत् च श्लोकं वा श्लोकार्द्धं एव वा पठितं चण्डिके मे तत् तव प्रसादात् सम्पूर्णतां यातु।।२।।

हे देवि! भूल के कारण भ्रमण करते हुये जो भी श्लोक अथवा श्लोकार्द्ध पढ़ा है, तुम्हारी कृपा से मेरी वे त्रुटियाँ सम्पूर्णता को प्राप्त हों।।२।।

यन्मात्राविन्दुबिन्दुद्वितयपदपदद्वन्द्ववर्णादिहीनम्
भक्त्याभक्त्यानुपूर्वं प्रसभकृतिवशाद्व्यक्तमव्यक्तमम्ब।
मोहादज्ञानतो वा पठितमपठितं साम्प्रतं ते स्तवेऽस्मिन्
तत्सर्वं साङ्गमास्तां भगवति वरदे त्वत्प्रसादात्प्रसीद ॥३॥

अन्वयः—अम्ब! ते अस्मिन् स्तवे साम्प्रतं प्रसभकृतिवशात् भक्त्या अभक्त्या अनुपूर्वं यत् मात्रा-बिन्दु-द्वितय-पद-पदद्वन्द्व-वर्णादिहीनं व्यक्तम् अव्यक्तम् मोहात् अज्ञानतः वा पठितम् अपठितं तत् सर्वं भगवति त्वत् प्रसादात् साङ्गम् आस्ताम् वरदे प्रसीद।।३।।

हे अम्बे! तुम्हारे इस माहात्म्यपाठ में द्रुत पाठ के कारण, हठकारिता के कारण मात्रा-अनुस्वार-विसर्ग-पद-सन्धि-समास एवं वर्णप्रभृति की जो हीनता हो गई हो, स्पष्टतः अथवा अस्पष्टतः उच्चरित हो गया हो तथा अज्ञानता के कारण पठित अथवा आपठित हो गया हो, तो हे परमेश्वरि! आपकी कृपा से वह सब सम्पूर्ण हो जाय। हे वरप्रदात्रि! मेरे प्रति प्रसन्न हो जाईये।।३।।

प्रसीद भगवत्यम्ब प्रसीद भक्तवत्सले।
प्रसाद कुरु मे देवि चण्डिके देवि नमोऽस्तु ते ॥४॥

अन्वयः—अम्ब! भगवति भक्तवत्सले! प्रसीद। देवि! मे प्रसादं कुरु, चण्डिके! देवि! ते नमः अस्तु।।४।।

हे जननी परमेश्वरि! हे भक्तवत्सले! मुझ पर प्रसन्न हो जाईये। मुझ पर कृपा करिये। मुझ पर कृपामयी हो जाईये। हे रुद्रचण्डिके देवि! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।।४।।

इति श्री श्री रुद्रचण्डी समाप्त

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

पाठविधिः

साधक को प्रात:काल 'आगमतत्त्वविलास' ग्रन्थ में अंकित प्रात:कृत्य करके उत्तरमुख अथवा पूर्वमुख होकर शुद्धासन पर बैठकर एकाग्र होकर अर्थबोध करने के साथ-साथ अपने उच्चारण को भी शुद्ध रखते हुये इसका पाठ करना चाहिये। इसमें आचमन-स्वस्तिवाचनादि के अनन्तर गुरुपूजा के पश्चात् इस प्रकार संकल्प करना चाहिये—

विष्णुरोम् तत्सदद्य अमुकमासि अमुकराशिस्थे भास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्र: श्रीअमुक.......... सर्वापच्छान्तिपूर्वकं श्रीरुद्रचण्डिकाप्रीतिकाम: (अथवा अपनी अभीष्ट इच्छा का नाम कहे) श्रीरुद्रयामलोक्तश्रीरुद्रचण्डीपूजापूर्वकं सकृत् (जितनी आवृत्ति करनी हो, वह कहे) रुद्रचण्डीपाठकर्ममहं करिष्ये।

तदनन्तर घटस्थापन, कामिनीदेवी का ध्यान, मन्त्राचमन, सामान्यार्घ्य-स्थापन, द्वारपूजन, माषभक्तबलि, भूतापसारण, भूमिशुद्धि, आसनशुद्धि, गुरुपंक्तिप्रणाम, करशुद्धि, पुष्पशुद्धि, दिव्य विघ्ननिवारण, दिग्बन्धन, भूमि विघ्ननिवारण, अन्तरिक्ष विघ्ननिवारण, देवता तथा पूजाद्रव्यशुद्धि, मन्त्रशुद्धि, वह्निवेष्टन, देहमार्जन, आत्मरक्षा, प्राणायाम (ह्रीं मन्त्र से) करने के उपरान्त ऋष्यादि न्यास करना चाहिये।

ऋष्यादि न्यास—ॐ अस्य श्रीरुद्रचण्डीमन्त्रस्य रुद्रऋषिरनुष्टुप्छन्द: रुद्रचण्डी देवता मम इष्ट्यर्थसाधने विनियोग:।

मस्तक—ॐ रुद्रऋषये नम:। गुह्य—ॐ ह्रीं बीजाय नम:।
मुख—ॐ अनुष्टुप् छन्दसे नम:। पादद्वय—ॐ स्वाहा शक्तये नम:।
हृदय—ॐ रुद्रचण्डिकायै नम:। सर्वाङ्ग—ॐ रुद्रचण्डिकायै नम:।

करन्यास—ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नम:। ह्रैं अनामिकाभ्यां हुं।
ह्रीं तर्जनिभ्यां स्वाहा। ह्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्।
ह्रं मध्यमाभ्यां वषट्। ह्र: करतलपृष्ठाभ्यां फट्।

अङ्गन्यास—ह्रां हृदयाय नम:। ह्रैं कवचाय हुं।
ह्रीं शिरसे स्वाहा। ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्।
ह्रूं शिखायै वषट्। ह्र: करतलपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्।

व्यापकन्यास—ह्रीं (सात बार पढ़ना चाहिये)।

ध्यान—कूर्ममुद्रा में इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

ॐ रक्तवर्णां महादेवीं लसच्चन्द्रविभूषिताम् ।
पट्टवस्त्रपरीधानां सर्वालङ्कारभूषिताम्।।
कराभयकरां देवीं मुण्डमालासुशोभिताम् ।
कोटिचन्द्रसमाभासां वदनैः शोभितां पराम्।।
करालवदनां देवीं किञ्चिजिह्वाग्रलोहिताम् ।
स्वर्णवर्णमहादेवहृदयोपरिसंस्थिताम ।
अक्षमालाधरां देवीं जपकर्मसमाहिताम् ।।

ध्यान के अन्त में मानस पूजा, दानार्घ्य-स्थापन, विलोमार्घ्य-स्थापन पीठदेवता तथा पीठशक्तिपूजा को उसी प्रकार करना चाहिये, जिस प्रकार दक्षिणकालिका-पूजन में किया जाता है (द्रष्टव्य—आगमतत्त्वविलास ग्रन्थ)।

इसके पश्चात् जो पूर्णभिषिक्त तान्त्रिक हैं, केवल उन्हें ही संविदाशोधन, संविदातर्पण, कारणशोधन, शुद्धिशोधन, श्रीपात्रादिस्थापन, कारणतर्पण, तत्त्वशुद्धि, तत्त्वस्वीकार, बिन्दुस्वीकार एवं सर्वभूतबलि प्रदान करनी चाहिये।

पुनः प्राणायाम, कराङ्गन्यास, ध्यान, आवाहन (जहाँ मूर्त्ति है, वहाँ प्राणप्रतिष्ठा), करके पञ्चोपचार अथवा दशोपचार अथवा षोडशोपचार से देवी का पूजन करना चाहिये।

रुद्रचण्डी देवी का मन्त्र है—ॐ ऐं ह्रीं ॐ क्रीं ह्रीं क्लीं ह्रीं द्रीं ।

एकाक्षरी बीजमन्त्र है—द्रीं।

इनकी गायत्री है—ॐ रुद्रचण्डिकायै विद्महे पूर्णफलप्रदायिन्यं धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्।

पूजा के अन्त में योनिमुद्रा प्रदर्शित करने के उपरान्त हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—श्री रुद्रचण्डिके देवि आज्ञापय भवत्या: परिवारान् पूजयामि।

तदनन्तर गन्ध-पुष्प से आवरण देवताओं का पूजन एवं तर्पण करना चाहिये; यथा—रुद्रऋषि, गणेश, वाणी, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, चण्डिका, ब्राह्मी आदि आठ शक्ति एवं असिताङ्ग आदि आठ भैरव—ये आवरण देवता होते हैं।

पुनः गन्ध-पुष्प से रुद्रचण्डी-पूजन, तीन बार तर्पण, गायत्री से पञ्चपुष्पाञ्जलि-समर्पण तथा यथाशक्ति बीजमन्त्र का जप करके बलि प्रदान करना चाहिये। रुद्रचण्डी

पाठ के पूर्व पशुबलि अथवा सात्त्विक बलिदान आवश्यक है, अन्यथा पाठ की हानि होती है। जप में कुल्लूका है—हुं।

महासेतु है—स्त्रीं (इसका दश बार जप करना चाहिये)।

सेतु है—ॐ (इसका दश बार जप करना चाहिये)।

मुखशोधन है—ॐ (इसका भी दश बार जप करना चाहिये)।

शापविमोचन—एक बार हाथ जोड़ कर निम्न मन्त्र का पाठ करना चाहिये—

ॐ नमश्चण्डिकायै। ॐ रं क्रीं क्रीं क्रूं शं षं वं रां सां हां ह्रं ॐ ॐ प्रजापति-ऋर्षिर्ब्रह्मविष्णुदेवता रुद्रचण्डीशापविमोचने विनियोग:।

ठं ठं ठं कं कं कं खं खं खं प्रजापतिर्ऋषिर्वायुर्देवता प्रचण्डचण्डीशापविमोचने विनियोग:।

प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्रीच्छन्दो: रुद्रो देवता ह्रीं सीं शूं हुं हुं फट् स्वाहा रुद्रचण्डी-गुह्यशापविमोचने विनियोग:।

प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्रीच्छन्दो: विराट् प्रकृतिकर्मणो देवता रुद्रचण्डीशापविमोचने विनियोग:।

कृष्णशापविमोचनमन्त्रस्य नारदऋषिरनुष्टुप्च्छन्द: श्रीकृष्णो देवता श्रीकृष्णशापविमोचने विनियोग:।

ॐ ह्रीं हुं हुं घोरचण्डी महाचण्डी साक्षाद् ब्रह्मस्वरूपिणी।

दूषिता कृष्णाशापेन मुक्ता त्वं भव सुव्रते।।
लोकानाञ्च हितार्थाय शम्भुना गदिता पुरा।
कृष्णशापविमुक्ता हि यथोक्तफलदा भव।।

ब्रह्मशापविमोचनमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिर्ब्रह्मा देवता ब्रह्मशापविमोचने विनियोग:।

ब्रह्मणा सेविता व्याप्ता न सम्यक् फलदायिनी।
शापमुक्ता हि देवि त्वं यथोक्तं फलदा भव।।

ह्रौं हं हं ह्रीं श्रीं श्रीं ब्रीं ब्रूं ऐं ह्रीं क्रीं ह्रूं गौं ऐं क्लीं क्रीं ह्रां ह्रीं हं हं हेसौ क्रीं रां श्रीं स्त्रीं ह्रीं ह्रीं ऐं क्लीं सौं क्लीं ह्रीं क्लीं क्लीं ॐ ॐ स्वाहा। रां राम: ॐ क्लीं क्लीं हं स: फट् वौषट् स्वाहा। ॐ ॐ ॐ हौं हौं हौं ह्रौं ह्रौं हुं हुं हुं स्वाहा। हुं ह्रीं ह्रीं ह्रौं ॐ क्ल: स्वाहा। ॐ ह्रीं हुं स्वाहा। ॐ ह्रौं नम: शिवाय स्वाहा।

तीन बार हाथ जोड़ कर कहे—ॐ हुं चण्डिकायै हुं स्वाहा।

हाथ जोड़ कर प्रार्थना करे—

ॐ रुद्रचण्डि नमस्तुभ्यं चण्डवैरिविनाशिनि।
सर्वपापहरे देवी सर्वदा वरदा भव।।

तीन बार हाथ जोड़कर गायत्री पढ़नी चाहिये। तदनन्तर रुद्रचण्डी कवच का पाठ करना चाहिये। इसके बाद मूल रुद्रचण्डी का पाठ प्रारम्भ करना चाहिये। एतदर्थ आधार पर पुस्तक को स्थापित करके पूजा के पश्चात् न तो उच्च स्वर में एवं न ही अति मृदु स्वर में; न द्रुत रूप से, न ही विलम्बित रूप से पाठ काना चाहिये। अर्थचिन्तन करते हुये इसका पाठ करना प्रशस्त होता है। प्रत्येक पटल के आदि एवं अन्त में घण्टानाद करना चाहिये। अवच्छेद के अन्त में 'इति' का उच्चारण नहीं करना चाहिये।

रुद्रचण्डी पाठ के अनन्तर देवी को प्रणाम करना चाहिये। श्रीपात्र-अर्घ्य का देवी के शिर पर दान करना चाहिये। सामान्यार्घ्य को देवी के चरणों में निवेदित करना चाहिये। दक्षिणा के अन्त में अच्छिद्रावधारण, वैगुण्य-समाधान, घट-विसर्जन, निर्माल्य अधिष्ठात्री-पूजन करके शान्तिदान करना चाहिये।

●

तन्त्रशास्त्र के महत्वपूर्ण ग्रन्थ-मूल संस्कृत एवं हिन्दी टीका सहित

- **तन्त्रसार :** परमहंस मिश्र (1-2 भाग)
- **कुलार्णवतन्त्रम् :** परमहंस मिश्र
- **नित्योत्सव :** (श्रीविद्याविमर्शकसद्ग्रन्थ) परमहंस मिश्र
- **त्रिपुररहस्यम् :** (ज्ञान एवं महात्म्य खण्ड) जगदीशचन्द्र मिश्र (1-2 भाग)
- **तन्त्रालोक :** राधेश्याम चतुर्वेदी (1-5 भाग)
- **स्वच्छन्दतन्त्रं :** राधेश्याम चतुर्वेदी (1-2 भाग)
- **नेत्रतन्त्रम् :** राधेश्[illegible]र्वेदी
- **कामाख्यातन्त्रम् :** [illegible] चतुर्वेदी
- **महाकालसंहिता :** [illegible]कला-कालीखण्ड) राधेश्याम चतुर्वेदी
- **महाकालसंहिता** [illegible]काली-खण्ड) राधेश्याम चतुर्वेदी (1-5 भाग)
- **रुद्रयामलम् :** सुधाकर मालवीय (1-2 भाग)
- **शारदातिलकम्-** सुधाकर मालवीय (1-2 भाग)
- **मन्त्रमहोदधि :** सुधाकर मालवीय
- **लक्ष्मीतन्त्रम् :** कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- **तन्त्रराजतन्त्रम्-** कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- **महानिर्वाणतन्त्रम् :** कपिलदेवनारायण
- **कामकलाविलास :** श्यामाकान्त द्विवेदी
- **वरिवस्यारहस्यम् :** श्यामाकान्त द्विवेदी
- **स्पन्दकारिका :** श्यामाकान्त द्विवेदी
- **सर्वोल्लासतन्त्रम् :** एस. खण्डेलवाल
- **नीलसरस्वतीतन्त्रम् :** एस. खण्डेलवाल
- **भूतडामरतन्त्रम् :** एस. खण्डेलवाल
- **सिद्धनागार्जुनतन्त्रम् :** एस. खण्डेलवाल
- **अन्नदाकल्पतन्त्रम् :** एस. खण्डेलवाल
- **त्रिपुरार्णवतन्त्रम् :** जगदीशचन्द्र मिश्र
- **विज्ञान**[illegible]पूलाल अँजना
- **श्री**[illegible]**म् :** कपिलदेवनारायण (1-5 [illegible])
- **दे**[illegible]द्रयामलतन्त्रोक्तम्) कपि[illegible] (1-2 भाग)
- **स्व**[illegible] टीका
- **महानिर्वाणतन्त्रम् :** कपिलदेवनारायण
- **बृहत्तन्त्रसार :** कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- **सौन्दर्यलहरी :** लक्ष्मीधरी टीका सहित सुधाकर मालवीय
- **सिद्धसिद्धान्तपद्धति :** द्वारकादास शास्त्री
- **आगमतत्त्वविलास :** एस.एन.खण्डेलवाल (1-4 भाग सम्पूर्ण)
- **राधातन्त्रम् :** एस.एन. खण्डेलवाल
- **सौभाग्यलक्ष्मीतन्त्रम्** एस.एन.खण्डेलवाल

डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी द्वारा हिन्दी में लिखित

तंत्र विषयक महत्त्वपूर्ण शास्त्रीय ग्रन्थ

- **श्रीविद्या-साधना :** (श्रीविद्या-उपासना का साङ्गोपाङ्ग शास्त्रीय विवेचन) (1-2 भाग सम्पूर्ण)
- **भारतीय शक्ति-साधना :** (शक्ति-विज्ञानः स्वरूप एवं सिद्धान्त का शास्त्रीय विवेचन)
- **ब्रह्मास्त्रविद्या एवं बगलामुखी-साधना :** (महाविद्याबगला-उपासना का शास्त्रीय विवेचन)
- **काश्मीर शैवदर्शन एवं स्पन्दशास्त्र :** (शिवसूत्र, शक्तिसूत्र एवं स्पन्दसूत्र के सन्दर्भ में)
- **मुद्राविज्ञान एवं साधना :** (नित्यकर्मीय एवं तान्त्रिक मुद्राओं का सचित्र एवं शास्त्रीय विवेचन)

श्रीसाम्बपुराणम्

(सूर्य उपासना का विवेचक ग्रन्थ)

हिन्दी टीका सहित

श्री एस. एन. खण्डेलवाल

चौखम्बा पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली - 110002

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी-221001

तन्त्रशास्त्र के महत्वपूर्ण ग्रन्थ-मूल संस्कृत एवं हिन्दी टीका सहित

- **तन्त्रसार** : परमहंस मिश्र (1-2 भाग)
- **कुलार्णवतन्त्रम्** : परमहंस मिश्र
- **नित्योत्सव** : (श्रीविद्याविमर्शकसद्ग्रन्थ) परमहंस मिश्र
- **त्रिपुरारहस्यम्** : (ज्ञान एवं महात्म्य खण्ड) जगदीशचन्द्र मिश्र [illegible] भाग)
- **तन्त्रालोक** : [illegible] चतुर्वेदी (1-5 भाग)
- **स्वच्छन्दतन्त्रं** [illegible] श्याम चतुर्वेदी (1-2 भाग)
- **नेत्रतन्त्रम्** : राध [illegible] चतुर्वेदी
- **कामाख्यातन्त्र** [illegible] श्याम चतुर्वेदी
- **महाकालसंहिता** [illegible] कला-कालीखण्ड) राधेश्याम चतुर्वेदी
- **महाकालसंहिता** : (गुह्यकाली-खण्ड) राधेश्याम चतुर्वेदी (1-5 भाग)
- **रुद्रयामलम्** : सुधाकर मालवीय (1-2 भाग)
- **शारदातिलकम्**-सुधाकर मालवीय (1-2 भाग)
- **मन्त्रमहोदधि** : सुधाकर मालवीय
- **लक्ष्मीतन्त्रम्** : कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- **तन्त्रराजतन्त्रम्**-कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- **महानिर्वाणतन्त्रम्** : कपिलदेवनारायण
- **कामकलाविलास** : श्यामाकान्त द्विवेदी
- **वरिवस्यारहस्यम्** : श्यामाकान्त द्विवेदी
- **स्पन्दकारिका** : श्यामाकान्त द्विवेदी
- **सर्वोल्लासतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **नीलसरस्वतीतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **भूतडामरतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **सिद्धनागार्जुनतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **अ[illegible]कल्पतन्त्रम्** : एस. खण्डेलवाल
- **[illegible]तन्त्रम्** : जगदीशचन्द्र मिश्र
- [illegible] बापूलाल अँजना
- श्री[illegible]तन्त्रम् : कपिलदेवनारायण (1[illegible]सम्पूर्ण)
- देव[illegible] (रुद्रयामलतन्त्रोक्तम्) कपि[illegible] (1-2 भाग)
- स्व[illegible] टीका
- **महानिर्वाणतन्त्रम्** : कपिलदेवनारायण
- **बृहत्तन्त्रसार** : कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- **सौन्दर्यलहरी** : लक्ष्मीधरी टीका सहित सुधाकर मालवीय
- **सिद्धसिद्धान्तपद्धति** : द्वारकादास शास्त्री
- **आगमतत्त्वविलास** : एस.एन.खण्डेलवाल (1-4 भाग सम्पूर्ण)
- **राधातन्त्रम्** : एस.एन. खण्डेलवाल
- **सौभाग्यलक्ष्मीतन्त्रम्** एस.एन.खण्डेलवाल

डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी द्वारा हिन्दी में लिखित

तंत्र विषयक महत्त्वपूर्ण शास्त्रीय ग्रन्थ

- **श्रीविद्या-साधना** : (श्रीविद्या-उपासना का साङ्गोपाङ्ग शास्त्रीय विवेचन) (1-2 भाग सम्पूर्ण)
- **भारतीय शक्ति-साधना** : (शक्ति-विज्ञानः स्वरूप एवं सिद्धान्त का शास्त्रीय विवेचन)
- **ब्रह्मास्त्रविद्या एवं बगलामुखी-साधना** : (महाविद्याबगला-उपासना का शास्त्रीय विवेचन)
- **काश्मीर शैवदर्शन एवं स्पन्दशास्त्र** : (शिवसूत्र, शक्तिसूत्र एवं स्पन्दसूत्र के सन्दर्भ में)
- **मुद्राविज्ञान एवं साधना** : (नित्यकर्मीय एवं तान्त्रिक मुद्राओं का सचित्र एवं शास्त्रीय विवेचन)

श्रीसाम्बपुराणम्

(सूर्य उपासना का विवेचक ग्रन्थ)

हिन्दी टीका सहित

श्री एस. एन. खण्डेलवाल

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
नई दिल्ली - 110002

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी-221001